DRAMA AND THEATRE IN HINDI

BA HINDI

IV SEMESTER

CORE COURSE

(2011 Admission)

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

CALICUT UNIVERSITY P.O., MALAPPURAM, KERALA-679 635.

175

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

BA HINDI

1V SEMESTER

CORE COURSE

DRAMA AND THEATRE IN HINDI

Prepared By:

Dr. T.A. ANAND
Asst. Professor of Hindi
PG. Dept. of Hindi & Research Centre
Govt. Arts & Science college, Kozhikode

Scrutinised By:

Dr.Pavoor Sasheendran,
38/1294, 'Appughar',
Edakkad P.O.,
Calicut-5

Lay out : Computer Section, SDE.

©
Reserved

CONTENTS

Page No.

Module -1	**हिन्दी नाटक और रंगमंच में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का देन**	**5**
Module-2	**समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच :**	**12**
Module -3	**इला प्रभाकर श्रोत्रिय**	**17**
Module -4	**हिन्दी रंगमंच उद्भव और विकास**	**23**

Module - 1

हिन्दी नाटक और रंगमंच में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का देन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा। गद्य के विभिन्न विधाओं का श्रीगणेश उन्हीं के युग से आरंभ होता है। हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया वह सराहनीय है।

भारतेन्दु जी ने अनूदित एवं मौलिक दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की। उनके नाट्य साहित्य को हम अनूदित और मौलिक दो भागों में विभाजित कर सकते हैः–(क)अनूदित नाटक नाटकों में–विद्या सुन्दर, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी,पाखण्ड विडम्बन, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, नत्नावली, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बन्धु।

१) विद्यासुन्दर – संस्कृत के चौर पंचाशिका के बंगला संस्करण का अनुवाद।
२) रत्नावली – संस्कृत से।
३) धनंजय विजय – संस्कृत से।
४) कर्पूर मंपरी – संस्कृत से।
५) पाखण्ड विडम्बन – संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद।
६) मुद्राराक्षस – संस्कृत नाटककार विशाखदत्त के नाटक का अनुवाद।
७) दुर्लभ बन्धु – अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के मरचेंट ऑफ वेनिस का अनुवाद।

(ख) मौलिक नाटकों में – वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, अन्धेर नगरी, भारत दुर्दशा, नील देवी, प्रेम जोगिनी, चन्द्रावली, सती–प्रताप।

भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज सुधार की ,भावना, देश के गौरवपूर्ण अतीत की झांकी, संस्कृति के उज्जवल पक्ष, राष्ट्र प्रेम एवं स्वदेशाभिमान को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। देश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने नील देवी, भारत जननी और भारत दुर्दशा नाटकों की रचना की। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम् व्यंग्य नाटिकाएं हैं जबकि चन्द्रावली नाटिका में मधुरा भक्ति को विषय बनाया गया है। देश प्रेम, हास्य–व्यंग्य एवं समाज–सुधार भारतेन्दुजी के नाटकों के प्रमुख विषय हैं।

भारतेन्दु जी के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ–साथ जनचेतना जाग्रत करना भी था। नैतिक मूल्यों के पक्षधर इस कालके नाटककारों में देश–प्रेम, समाज–सुधार, अतीत गौरव का भाव विद्यमान है। भारतेन्दु जी ने एक ओर तो संस्कृत नाट्य शास्त्र का अनुकरण अपने नाटकों में किया तो दूसरी ओर पाचात्य नाट्यशास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं रहे।

भारतेन्दु जी ने अपने समय में दर्शकों की रुचि को परिष्कृत करने का प्रयास किया और पारसी थियेटर की व्यावसायिक मनोवृत्ति से उत्पन्न हीन रुचियों का प्रबल विरोध किया। उन्होंने संस्कृत नाट्यकला के साथ–साथ पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वय करके हिन्दी नाट्य कला को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करने का स्तुत्य प्रयास किया।

वस्तुतः उन्होंने अपनी नाट्य रचनाओं के माध्यम से अपने समकालीन लेखकों को नाटक लिखने के लिए प्ररिते किया तो दूसरी ओर अपनी आलोचनात्मक कृति 'नाटक' के द्वारा नाट्य–शिल्प से उन्हें अवगत भी कराया।

➢ भारतेन्दु काल के अन्य नाटककारों में प्रमुख हैं–

लाला श्रीनिवासदास ने चार नाटकों की रचना की – श्री प्रहलाद चरित्र, तप्ता संवरण, रणधीर प्रेम मोहिनी और संयोगिता स्वयंवर।

राधाकृष्ण भट्ट द्वारा रचित नाटकों में दमयन्ती स्वयंवर, वृहन्नला, वेणीसंहार, कलिराज की सभा, शिक्षादान, रेल का विकट खेल, बालविवाह आदि प्रसिद्ध है।

बालकृण भट्ट द्वारा रचित नाटकों में दमयन्ती स्वयंवर, बृहन्नला, वेणीसंहार, कलिराज की सभा, शिक्षादान, रेल का विकट खेल, बालविवाह आदि विशेष प्रसिद्ध हुए।

राधाचरण गोस्वामी ने प्रहसनों की रचना में नाम कमाया। उनके लिखे प्रहसनों में से कुछ के नाम है– तन मन धन गोसाईजी के अर्पण, बूढ़े मुँह मुंहासे लोग देखें तमासे, अमर सिंह राठौर, सती चन्द्रावली और श्रीदामा।

गोपालराम गहमरी ने सामयिक विषयों को लेकर सफर नाटकों की रचना की। 'देश दशा' में सरकारी कर्मचारी धांधली का वर्णन किया गया है। 'जैसे को तैसा' तथा 'विद्या विनोद' उनके व्यंग्यात्मक नाटक हैं। भारतेन्दु युग के एक अन्य सशक्त नाटककार के रूप में जी.पी. श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने जिन प्रहसनों की रचना की उनमें उलटफेर, दमदार आदमी, गड़बड़ झाला, कुर्सी मैन, न घर का न घाट का आदि उल्लेखनीय रचनाएँ मानी जाती है। इसी परम्परा में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के नाटकों को देखा जा सकता है।

भारतेन्दु युग के नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक कथाओं को विषय–वस्तु बनाया गया। समाज सुधार, राष्ट्रीय गौरव, अतीत गौरव को नाटकों के माध्यम से दर्शकों तक सम्प्रेषित किया गया। प्रहसनों का मूल उद्देश्य व्यंग्य के द्वारा समाज की कुरीतियों का समापन करना था। भारतेन्दुयुगीन नाटकों में विषयों की विविधता थी, रंग–संकेत भी इन नाटकों में मिलते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग हिन्दी नाटकों के विकास का प्रथम पड़ाव माना जा सकता है। भारतेन्दु जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके योगदान पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध समालोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "भारतेन्दु जी ने अपने मौलिक और अनूदित नाटकों के जरिए एक साथ कई काम किए। उन्होंने नाटकों के माध्यम से नई हिन्दी को लोकप्रिय बनाया, पारसी रंगमंच का विरोध किया तथा प्राचीन नाटकों का उद्धार किया।" विभिन्न भाषाओं से अनूदित नाटकों ने हिन्दी नाटकों को नई दिशा प्रदान करने में सहायता की । भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों से हिन्दी के नाट्यकारों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया और उन्हें नवीन विषयों पर नाटक लिखने की प्रेरणा भी दी।

➢ अंधेर नगरी

रचनाकार – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,

रचनाकाल : संवत १९३८, प्रहसन, छह अंक

प्रमुख पात्र — चैपट राजा, महन्त, नारराय्यणदास, गोवरधनदास, सेनापति, मंत्री तथा बाजार आदि।

अंधेर नगरी : कथ्य एवं शिल्प

'अंधेर नगरी' की रचना भारतेन्दुजी ने सन् १८८१ ई. में की गयी थी। इसे प्रहसन माना गया है। इसके अन्तर्गत छह छोटे–छोटे अंक हैं, जिन्हें नाटक के छह, दृश्य कहा जा सकता है। यह एक व्यंग्य रचना है जिसमें विनोदपूर्ण शैली में कुशासन के दुष्परिणामों की ओर इंगित किया गया है। ऐसा राजा, जिसके शासन में कोई व्यवस्था न हो, जहाँ न्याय–अन्याय में भेद न किया जाता हो, अच्छे–बुरे में कोई अन्तर न होता हो, निश्चय ही वह 'चौपट राजा' है और उसकी नगरी 'अन्धेर नगरी' है। इस नाटक की रचना किसी जमींदार को लक्षित करके नेशनल–थियेटर केलिए एक ही बैठक में लिखा गया था।

इस प्रहसन के प्रथम अंक में एक महन्त अपने दो शिष्यों गोवर्धनदास एवं नारायणदास के साथ भजन गाते हुए प्रवेश करता है तथा लोगों को लोभ से बचने का उपदेश भी देता है। एक नगर के बाहर पड़ाव डालकर वह अपने दोनों शिष्यों को भिक्षा के लिए नगर में भेज देता है। दूसरे अंक का प्रारम्भ बाजार के दृश्य से होता है जहाँ प्रत्येक दुकानदार आवाज लगा–लगाकर अपना माल बेच रहा है। यह बाजार प्रतीक है सारे विश्व का जहाँ अंग्रेज भी हैं और भारतीय भी हैं। गोवर्धन को बाजार में प्रवेश करते ही पता चलता है कि यहाँ प्रत्येक वस्तु टके सेर बिक रही है। वह प्रसन्न होता है। भरपेट मिठाई खाता है और खरद भी लाता है प्रसन्नता में नाचते–गाते वह गुरु के पास पहुँच कर सारी वस्तुस्थिति से उन्हें अवगत करता है। गुरुजी कहते हैं कि हमें ऐसी 'अन्धेर नगरी' में नहीं रहना चाहिए जहाँ 'टका सेर भाजी और टका सेर खाजा' बिकता हो किन्तु गोवर्धन लोभ के वशीभूत होकर रह जाता है।

नाटक के अगले दृश्य में राजा के दरबार को दिखाया गया है जहाँ राजा मदिरापान करता है, तथा अपनी मूर्खता का परिचय देता है। मंत्री उसकी चापलूसी, खुशामद एवं चमचागीरी करते हैं। राजा की मूर्खता को उजागर करना और यह निरूपित करना ही इस दृश्य का प्रयोजन है कि मूर्ख राजा फरियादी को बिना सोचे समझे और बिना कारण के दण्ड है।

पांचवें दृश्य में गोवर्धनदास को उस अंधेर नगरी में मिठाई खाते और आनन्द मनाते दिखाया गया है। वह सोचता है कि मेरे गुरुजी व्यर्थ में ही मुझे यहाँ रहने से रोक रहे थे यह तो बहुत अच्छी नगरी है। तभी अचानक राजा के सैनिक आकर उसे पकड़ ले जाते हैं। अब उसे अपनी भूल का बोध होता है और गुरु की बात न मानने पर वह पश्चाताप करता है।

एक फरियादी की बकरी दीवार के नीचे दबकर मर गई। राजा ने रामिस्त्री को बुलवाकर फांसी की रजा सुना दी क्योंकि उसने दीवार इनती कमजोर क्यों बनाई। राजमिस्त्री के गले में फांसी का फंदा डाला गया किन्तु गर्दन पतली थी, फंसा मोटा था। अतः राजा ने उसे मुक्त कर दिया और ऐसा मोटा आदमी खोजकर लाने को कहआ जिसकी गर्दन फंदे में फिट हो जाय। इसी लिए सिपाही गोवर्धनदास को पकड़ के गए जो टके सेर की मिठाई खा–खाकर मोटा हो गया था।

जब गोवर्धनदास फांसी पर चढ़ाया जाने वाला था तभी अचानक वहाँ गुरुजी आ गए और उन्होंने चिन्तित गोवर्धनदास को इस विपति से मुक्ति का उपाय बताया। गुरु और शिष्य में इस बात पर विवाद होने लगा कि फांसी पर तुम नहीं चढ़ोगो मैं चढूँगा। इस होड़ को देखकर जब राजा पूछता है कि यह क्या मामला है, तुम दोनों ही क्यों फांसी पर चढ़ना चाहते हो, तब गुरुजी बताते हैं कि इस समय ऐसा सुयोग बन रहा है कि जो फांसी पर चढ़ेगा वह सीधा स्वर्ग जायेगा, इसलिए हममें से प्रत्येक फांसी पर चढ़ना चाहता है। मूर्ख राजा यह सुनकर स्वयं फांसी पर चढ़ जाता है। नाटक की समाप्ति गुरुजी के इस वाक्य से होती है कि जहाँ धर्म–बुद्धि और नियम–कानून पर आधारित समाज न हो वहाँ नहीं रहना चाहिए क्योंकि इस अन्धेर नगरी में निवास करने वालों का उसी तरह विनाश होता है जैसा चौपट राजा का हुआ।

अंधेर नगरी एक उद्देश्यपूर्ण नाटक है जिसमें नाटककार ने अंग्रेजों के कुशासन का भण्डाफोड़ किया है। वे चौपट राजा की भांति धर्मबुद्धि एवं न्याय से विहीन व्यवस्था भारत में चला रहे हैं। जो राजा न्याय का रक्षाक कहा जाता है वहीं निर्दोष को सजा दे रहा है। इस विवेकहीनता एवं अन्याय का दुष्परिणाम भी शीघ्र सामने आता है, जब राजा अपने ही फैलाये हुए जाल में फंसकर स्वयं अपना विनाश कर लेता है। अन्धेर नगरी अंग्रेज सरकार के निकम्मेपन पर, उनकी अन्यायपूर्ण शासन नीति पर करारा तमाचा है। राजा मूर्ख है, बुद्धिविहीन है तथा खुशामद पसन्द एवं विवेकहीन है। उसके बौद्धिक दिवालिएपन का पता संवादों से चल जाता है। घासीराम चूरन वाला तत्कालीन अवस्था को किस प्रकार अपने गाने में व्यक्त करता है, इसका पता निम्न पंक्तियों से चलता है:

चूरन हाकिम सब जो खाते।

सब पर दूना टिकस लगाते ।।

चूरन साहब लोग जो खाता।

सारा हिन्द हजम कर जाता।।

इस चूरन से कैसा हाजमा दुरस्त होता है कि अंग्रेज लोगों ने इसे खाकर ही सारे भारत देश को हजम कर लिया। यही नहीं सरकारी कर्मचारियों में रिश्वत का बोलबाला था, जिसे वह निम्न पंक्तियों में व्यक्त करते हैं:

चूरन चला दाल की मण्डी।

इसको खावेंगी सब रण्डी।।

चूरन अमले सब जो खावें।

दूनी रिश्वत तुरत पचावें।।

'अंन्धेर नगरी' में अन्धेर इस सीमा तक बढ़ गया था कि अपराध कोई करता था और दण्ड किसी और को भुगतान पड़ता था। अंग्रेजी राज में भी यही सब दिखाई देता था। अविवेकी, प्रमादी एवं न्यायविहीन राजा की परिणति क्या होती है, यही दिखाना भारतेन्दुजी का लक्ष्य है। साथ ही यह भी सन्देश दिया है कि व्यक्ति को लोभ–लालच से दूर रहना चाहिए। अन्यया उसे गोवर्द्धनदास की भांति मुसीबत में फंसना पड़ सकता है।

'अन्धेर नगरी' में सत्ता की विवेकहीनता, राजनीतिक व्यवस्था में पनपता भ्रष्टाचार सत्ताधारियों की मानसिकता एवं निरंकुशता के साथ जनता में आई जड़ता एवं शिथिलता का भी उल्लेख किया गया है। निरीह जनता को किस प्रकार ठगा जा रहा है, मूल्यों में कैसी विकृति एवं विसंगति आई है, इसे चित्रित करना भी इस नाटक का उद्देश्य है। चौपट राजा के राज्य में अराजकता व्याप्त हो जाती है, न्याय–व्यवस्था पंगु हो जाती है तथा जीवन मूल्यों का क्षरण हो जाता है। इसे अभिव्यक्ति देने में भारतेन्दुजी को पूर्ण सफलता मिली है।

इस सामान्य से दीखनेवाले कथानक में सामन्ती व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था की भ्रष्टाचारिता, सत्ता की विवेकहीनता, शिथिलता–जड़ता, सत्ताधारी मानसिकता, उसकी निरंकुशता, निरीह जनता को लम्बे समय तक उलझाने और ठगने की प्रवृत्ति, आज के युग में मूल्यों की विकृति और विसंगति को चित्रित किया गया है।

'अन्धेरनगरी' अन्ध–व्यवस्था का प्रतीक है। चौपट राजा विवेकहीनता और न्यायदृष्टि के न होने का मूर्त स्वरूप है। उसका न्याय भी अन्धता का प्रमाण है क्योंकि बकरी की मृत्यु का दण्ड देने केलिए गोवर्धन पकड़ लिया गया, अर्थात् कोई भी दण्डित हो सकता है।

गोवर्धन के द्वारा मनुष्य की लोभवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। लोभवृत्ति ही मनुष्य को 'अन्धेर नगरी' की अन्धव्यवस्था, अमानवीयता में फँसाती है।

बाजार–दृश्य और दरबार–दृश्य इस प्रहसन के अमूल्य नाटकीय दृश्य है।सत्ता की अन्धव्यवस्था, विवेकहीनता, मूल्यहीनता का परिचय इन दो दृश्यों से मिलता है। बाजार का दृश्य पूरे देश के स्तर पर सस्तेपन, विकृति, आडम्बर, अमानवीयता, शोषण और संवेदनहीनता को ही व्यक्त करता है। चना जोर गरम बेचनेवाले घासीराम के शब्दों में बंगाली, मियाँ, हाकिम सब आ जाते हैं। कुँजड़िन सब्जी बेचते–बेचते अन्त में जब यह कह देती है कि "ले हिन्दुस्तान का मेवा– फूट और बैर", तो सारा सब्जी बाजार व्यंग्यात्मक अर्थ की व्यापकता में बदल जाता है। पाचकवाले की पंक्तियाँ महाजन, एडीटर, नाटकवाले, बनिये, साहेब, पुलिस सब पर प्रहार करती हैं। "चूरन साहब लोग जो खता। सारा हिन्द हजम कर जाता" – ये पंक्तियाँ केवल ब्रिटिश शासक तक ही सीमित नहीं हैं। और इन सबके बीच में भारतेंदु जब जातवाले ब्राह्मण को टके में जात बेचते दिखा देते हैं तो सारी मूल्यहीनता और संवेदनशून्य स्थिति साकार हो जाती है। वर्तमान संदर्भ में अन्धेर नगरी सामंति व्यवस्था से उपनिवेशी व्यवस्था तक का पलायन है। इसमें चित्रित अंधेर नगरी हमारे समाज विशेष कर तीसरी दुनिया की स्थिति है। और चौपट राजा वहाँ के शासकों की स्थिति को दर्शाता है। यह बाजार आज के बाजार पर भी आरोप लगा सकते हैं। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के कारण इन तीसरी दुनिया या विकासशील देशों की मंडी है।

चौथा दृश्य राजनीतिक कार्यवाहियों के खोखलेपन, आम आदमी को बहकाने–फुसलाने और न्याय के सन्दर्भ में अत्यन्त हल्की मन:स्थिति, प्रमाद और हास्यास्पद सत्ता को सामने लाता है। जिस तरह एक–एक करके बनिया, भिश्ती, कसाई आदि लाये जाते हैं वह एक खोखली, झूठी, लम्बी, ठगनेवाली न्याय प्रक्रिया और अमानवीय क्रम का चित्र लगता है। आम आदमी की फरियाद और उसकी पीड़ा वहीं–की–वहीं रह जाती है– सब स्वार्थ, उन्माद में उलझ जाते हैं।

भारतेन्दु ने चरित्र–सृष्टि में भी युगीन आवश्यकता, स्वतन्त्रता और आधुनिक युगबोध के साथ–साथ मानवीय दृष्टि से काम लिया है, वहाँ सैद्धान्तिक आग्रह मुख्य नहीं है। जहाँ तक 'अन्धेरे नगरी' का प्रश्न है, इस नाटक के पात्र वर्ग या व्यंग्य के प्रतिनिधि अधिक हैं, वहाँ उनकी वैयक्तिक विलक्षणता मुख्य नहीं है । इस नाटक में पात्रों के चरित्र–चित्रण जैसी अलग से कोई आवश्यकता नहीं होती । इस नाटक में यद्यपि कई पात्र हैं लेकिन मुख्यतः महन्त, गोवर्धनदास, राजा– ये तीन विशेष पात्र हो जाते हैं, क्योंकि यही कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त करते हैं– यही सत्तालोलुपता, लोभवृत्ति और नीति – उपदेश के प्रतीक हो जाते हैं और इन्हीं से नाटक का कथा और लक्ष्य सम्प्रेषित हो जाता है। नाटकीय व्यापारों के चयन और संयोजन की कुशलता की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' विशिष्ट है, पात्र उसी का अनिवार्य अंग है। यहाँ मनुष्य का, समाज और देश की, विश्व का चरित्र और उनकी क्रियाओं और स्थितियों के मूल प्रेरक तत्व ही मुख्य हैं। ये पात्र व्यक्ति के नहीं चारों ओर की विसंगतियों और जनता के प्रतीक हैं।

'अन्धेर नगरी' को जीवन्त, सार्थक, समकालीन रचना बनाने का श्रेय इसकी भाषा को भी है। नितान्त हरकत भरू, जीवन्त, सक्रिय भाषा, उच्चरित शब्द की ध्वनियों और लयों का सौन्दर्य लिये हुए उसमें मिलती है। "संवाद की विशेषता वाचालता नहीं, वाग्मिता है।" इस दृष्टि से नाट्यभाषा का उपयोग इस नाटक में हुआ है। भाषा को 'अंधेर नगरी' की अन्यतम उपलब्धि माना गया है। भाषा की नाट्यात्मक अभिव्यंजना, पैनापन, लय और टोन, चरित्रानुकूलता, चमत्कारिकता, नाटकीयता और रवानगी के कारण नेमिचन्द्र जैन ने भारतेन्दु को हिन्दी नाटक में बेजोड़ कहा है। स्वयं

बाजार का दृश्य ही भाषा की व्यंजना, लय तथा कल्पनादृष्टि का अनूठा उदाहरण है। उनकी भाषा–शक्ति ही उस साधारण दीखनेवाले दृश्य को व्यापक विस्तार और अर्थ–संकेत देती है। राजा के संवाद उसी की असभ्यता, मूर्खता प्रकट करते हैं। महन्तजी के संवादों में भाषा का एक संगम है तो राजा के संवादों में 'बकरी' शब्द के उलट–फेर से ही उसकी प्रवृत्तिध्वनित होती है। दूसरी ओर सामान्य मनुष्य जब भी आता है तो लय और तुकबन्दी में बातचीत चलती है। उस तुकबन्दी से राजा का, सत्ता का स्वाभाव और अधिक स्पष्ट होता है। साथ ही तुकबन्दी नाट्यप्रदर्शन में कई अर्थों में सोचने के अवसर देती है। व्यंग्य और प्रहार में उनकी नाट्यभाषा यहाँ सक्षम है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा का नितान्त नया समन्वित प्रयोग हुआ है।

अन्धेर नगरी की प्रासंगिकता हर युग में है। यह नाटक अपने कथ्य के कारण प्रासंगिक है। इसमें चित्रित सभी पात्र एवं उनकी प्रवृत्तियाँ हर युग में निरंतर चलता आ रहा है। इसमें चित्रित बाजार एक प्रतीक है, जहाँ सब कुछ ऊपर–नीचे है, उलट–फेर है। इस बाजार में सामान्य बुद्धि गिरवी रखा हुआ है। जिस राज्य में सब कुछ टके सेर पर मिलती है, वहाँ का शासन व्यवस्ता में भयंकर कमी होगा। इस नाटक में जो राजा है वह चौपट है। उनका हर एक हरकत चौपट हो जाता है। यहाँ की न्याय व्यवस्था निरपराधी या साधारण व्यक्ति को ढंड देता है और बिना सोचे समझे अन्याय करते हैं। इस नाटक की रचना उन दिनों हुई जब भारत में सामन्तवादी व्यवस्था खतम होने को आया और पूँजीवादी व्यवस्था आरंभ हो रहा था। आज भी सालों बाद यह नाटक प्रासंगिक इस लिए है, क्योंकि आज पूँजीवादी व्यवस्था देश के बाहर बैठ कर बाजार के माध्यम से सभी देशों में अपना राज कर रहा है। साथ ही देश का शासक इन पूँजीवादियों के हाथ का पुतला है। इस संदर्भ में बाजार और शासक, साधारण लोगों को झूठी व्यवस्था में रहने को मजबूर करता है। जिस तरह अंधेर नगररी के बाजार में नमक से लेकर धर्म का व्यापार होता है, वर्तमान बाजार में भी सब कुछ उपलब्ध है। आज हमारा जीवन पर बाजार का नियंत्रण है। बाजार के साथ साथ विवेकहीन और मूल्यहीन शासक भी हमारे जीवन पर नियंत्रण रखते है। भारतेन्दु युग में यह नाटक देख कर जो विचार आया होगा वहीं आज भी यह नाटक वर्तमान समाज का आलोचनात्मक चित्र खीचता है। इस लिए यह नाटक प्रासंगिक है।

88888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888888

संदर्भ ग्रन्थ : अंधेर नगरी , भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजकलम प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०

Module - 2

➢ समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच :

हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में समकालीनता की संज्ञा सन् १९६० के बाद लगाया गया था। ६० के आस–पास हिन्दी रंगमंच और नाटक का तेजी से विकास होने लगा। इसका एक बड़ा कारण राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना है। संस्कृत नाट्य परम्परा के अध्ययन पर विशेष बल देते हुए आधुनिक नाट्य तक पहुँचना राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का प्रमुख उद्देश्य था, रंगकर्मियों में एक सम्यक रंगदृष्टि का विकास करना, विद्यालय का लक्ष्य रहा। इस समय तक हिन्दी के कुछ रंगकर्ता विश्व रंगमंचीय आन्दोलनों से वाकिफ थे। जिसका प्रभाव एवं प्रयोग समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच में देखा जा सकता है। सन् १९६२ में अल्काजी को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक बनाए गये और यहीं से हिन्दी रंगमंचकी दिशा भी बदलने लगा। उन्होंने भारतीय रंगकर्मीयों को पश्चिमी नाट्य परम्परा से अवगत कराया। उन्होंने इब्सन,सोफोक्लीस, मोलियर, कामू, स्ट्रीनबर्ग, शेक्सपीयर, ब्रेख्त और बैकेट आदि के नाटकों के मंचन के माध्यम से विश्व नाट्य साहित्य के हिन्दी मंच को अधिक संमृद्ध बनाया। इससे हिन्दी के रंगकर्मी फ्रांस, इंग्लैंड, नार्वे, स्वीडन, ग्रीक आदि नाटकों तथा नाट्यशैलियों के संपर्क में आए। इससे एक नई रंगदृष्टि का विकास अवश्य हुआ। इस दैरान हिन्दी नाटकों को पाश्चात्य नाट्य शिल्प के आधार पर मंचन करने लगा। एक नई रंगप्रयोग का आविर्भाव हुआ। समकालीन संदर्भ में आरंभिक दौर के हिन्दी नाटकों नए शिल्प,रंग–ढंग से प्रस्तुत किया गया। अलकाजी ने मोहन राकेश, धर्मवीर भारती आदि के नाटकों को नए प्रयोग से प्रस्तुत किया। कथ्य के क्षेत्र में समकालीन हिन्दी नाटक व्यक्ति और समाज केन्द्रित है। पुराण, पौराणिक एवं लोक कथाओं को आधुनिक संदर्भ से जोड का या आधुनिक संदर्भ के अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत करते थे। समकालीन हिन्दी नाटकों में हिन्दी भाषा के अतिरिक्त हिन्दीतर भाषा नाटकों का भी आविर्भाव हुआ। हम ऐसे कह सकते हैं कि सन् ६० के बाद नाटक मौलिकता, जटिलता और सर्जनात्मकता का सबूत देने लगे। सातवें, आठवे और नवे दशक में हिन्दी नाटक ने अपने कथ्य एवं शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। इन तीन शदकों के महत्वपूर्ण नाटकों को समकालीन हिन्दी नाटक कहते हैं। समकालीन हिन्दी नाटकों के कथ्य में मुख्यतः रिश्तों की कडवाहट, सम्बन्धों में बिखराव, मूल्य हीनता, समकालीन मानवीय स्थिति की विडम्बना, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक प्रश्न समकालीन हिन्दी नाटकों का विषय वस्तु बना है।

समकालीन हिन्दी नाटककारों में लक्ष्मीनारायण लाल, ब्रलमोहन शाह, सुशीलकुमार सिंह, मुद्राराक्षस, शंकरशेष, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, किरनचन्द्र शर्मा, सुरेशचन्द्र शुक्ल, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, राजेन्द्रकुमार शर्मा, ललित मोहन धपत्याल, सुदर्शन मजीठिया, लक्ष्मीकान्त वर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, दयाप्रकाश सिन्हा, विष्णु प्रभाकर, हेमीदुल्ला, मणिकधुकर, शरद जोशी, भीष्म साहनी, डॉ.नरेन्द्र मोहन तथा स्वदेश दीपक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण नाटककार है।

➢ समकालीन हिन्दी नाटकों की कथ्य योजना।

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में कथ्यगत नवीनताएँ देखे जा सकते हैं। इस युग के नाटकों में जीवन और जगत के साथ ही समसामयिक जीवन सन्दर्भों को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा गया। समकालीन हिन्दी नाटकों में पहली बार मानवीय संवेदना को इतनी सूक्ष्मता से उभारने का प्रयास किया गया और जीवन से निरन्तर संघर्ष करते हुए वर्तमान आदमी को नाटक का विषय बनाया गया। समकालीन हिन्दी नाटकों में पहली बार स्त्री–पुरुष सम्बन्ध को कथ्य बनाकर नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत की गयी। एक बीमार, ढीला, सुस्त एवं टूटता दाम्पत्य सम्बन्ध नाटक का विषय

बना और स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की सूक्ष्मताओं पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। नेताओं का कर्तव्यहीनता, स्वार्थपरता और राजनीति की दिशाहीनता नाटक के कथ्य के रूप में प्रधानता पाने लगी। हिन्दी नाटकों में स्वातंत्र्योतर भारत के शोषण एवं भ्रष्टाचार को चित्रित करने लगी। समाज के निम्न से निम्न व्यक्ति भी नाट्यरचना के केन्द्र में आया और विशेषकर मध्यवर्ग की समस्याओं को नाटक में स्थान मिला। समसामायिक जीवन के मूल्यहीनता, व्यक्ति संबन्ध आदि का जिक्र तात्कालिन नाटकों में होने लगा। समकालीन हिन्दी नाटककारों ने नाटकों में अपने परिवेश से जूझते एवं अपने अस्तित्व की सार्थकता हेतु संघर्ष करते तात्कालीन आदमी को रूपायित किया है। व्यक्ति के आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष और अन्तर्विरोध, तनाव एवं द्वन्द्व का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है।

वर्तमान राजनीति की भ्रष्टता, राजनीतिक दांव पेंच, नेताओं की कुत्सित वृत्तियाँ, पतनोन्मुखी राजनीति, राजनीति का दोगलापन, कुर्सी पाने की होड़ में गिरता मानवीय मूल्य और इन सबसे आहत होते आम आदमी को कथ्य बनाकर लिखे गये राजनीतिक व्यंग्य नाटकों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिनमें लक्ष्मी नारायण लाल का 'मि. अभिमन्यु', 'सूर्यमुख और नरसिंह कथा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', 'लडाई', 'अब गरीबी हटाओं', शरद जोशी का 'अंधों का हाथी', गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', आदि प्रमुख है।

स्त्री–पुरुष सम्बन्ध को अभिव्यक्त करने वाले नाटकों में प्रमुख है– मोहन राकेश का 'लहरों के राजहंस', 'आधे–अधूरे', लक्ष्मी नारायण लाल का 'मादा केक्टस', 'सूर्यमुख', 'करफ्यू', सुरेन्द्र वर्मा का 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'द्रौपदी', रमेश बक्षी का 'देवयानी का कहना है', मुद्राराक्षस का 'योअर्स फेथफुली', मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी', आदि। नारी का पुरुष के प्रति समर्पण अथव्वा पुरुषों द्वारा नारी को मजबूर कर शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश इन नाटकों में देखा जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा को भ्रष्टता, उद्देश्यहीनता, दिशाहीनता, महत्वहीनता और उससे उपजी मूल्य दृष्टि की हीनता को नाटक का कथ्य बनाकर लिखे गये नाटकों में शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य', कुसुम कुमार का 'ओम क्रांति क्रान्ति', जि.जे. हरिजीत का 'एक और विक्रमोर्वशीय' तथा 'प्रिसिपल परशुराम' तथा दयाप्रकाश सिन्हा का 'ओह अमेरिका' आदि प्रमुख है।

बदलते समाज और व्यक्ति जीवन के कारण मनुष्य का आन्तरिक संस्कार बदल गया है और अपनी आदिम भूख मिटाने के लिए निरन्तरी जंगली पशु होता जा रहा है। समकालीन हिन्दी नाटकों में इस विषय को कथ्य बनाया गया है। विभिन्न जंगली पशुओं को लक्ष्य कर या उन्हें प्रतीक बनाकर कथ्य के रूप में पाशविक प्रवृत्तियों को स्थान देकर लिखे गये नाटकों में ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', रमेश बक्षी का 'तीसरा हाथी', मुद्राराक्षस का 'तेन्दुआ', गिरिराज किशोर का 'घास और घोड़ा' आदि।

भारतीय सरकारी कार्यालयों में फैली भ्रष्टता, रिश्वतखोरी, उत्तरदायित्वहीनता जैसी प्रवृति को नाटक का कथ्य बनाकर भी कुछ नाटक लिखे गये हैं जिनमें वृजमोहन शाह का 'त्रिशंकु', कुसुम कुमार का 'दिल्ली ऊँचा सुनती है'। शिक्षा विभाग में फैली भ्रष्टता 'ओम क्रांति क्रान्ति' में चित्रित है।

कलाकार की सिसृन्छा और सत्ता के साथ उसके अनिच्छापूर्वक सम्बन्ध को विषय बनाकर भी कई नाटक लिखे गये हैं। ऐसे नाटकों का कथ्य कलाकार, रचनाकार, शिल्पी आदि के परिवेश तथा व्यवस्था द्वारा उनके शोषण से सम्बन्धित है। मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन', जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोर्णाक', भीष्म साहनी का 'हानूश' आदि में कलाकार की आन्तरिक पीड़ा एवं सिसृच्छ सृजनात्मक वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कोशिश की जाती रही है।

युगान्तकारी व्यक्तित्व को नाटक का कथ्य बनाकर तत्कालीन परिवेश एवं विसंगतियों को आज के सन्दर्भ में घटित होता हुआ भी दिखाया गया है। कबीर के व्यक्तित्व एवं परिवेश को नाटक का कथ्य बनाकर लिखे गये ऐसे नाटकों में मणि

मधुकर का 'इकतारे की आँख', भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बज़ार में', तथा नरेन्द्र मोहन का 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' प्रसिद्ध है।

समकालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य पारिवेशिक विसंगतियों, समस्याओं एवं विषमताओं को पौराणिक कालीन घटनाओं और इतिहास सम्मत चरित्रों अथवा स्थितियों के सन्दर्भ में कथ्य बनाकर भी कई नाटक लिखे गये हैं। ऐसे नाटकों में जगदीशचन्द्र माथुर का 'पहला राजा', लक्ष्मी नारायण लाल का 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', नरेन्द्र कोहली का 'शंबूक की हत्या', सुरेन्द्र वर्मा का 'आठवाँ सर्ग', दयाप्रकाश सिन्हा का 'कथा एक कंस की', गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' आदि।

समकालीन हिन्दी नाटकों में कथ्य के स्तर पर देहान्तर के प्रसंग से जुड़ी नाट्यरचनाएं भी सामने आयी है। इससे उत्पन्न द्वन्द्व एवं तनाव को कथ्य बनाकर कई नाट्यकृतियाँ रचित है। गिरीश कर्नाड के 'ययाती', 'हयवदन', शंकर शेष का 'अरे मायावी सरोवर', प्रभाकर श्रोत्रिय का 'इला' आदि।

समसामयिक पारिवेशिक पीड़ाओं से गुजरते, विसंगतियों से क्षुब्ध होते और विषमताओं से प्रभावित होने हुए समकालीन हिन्दी नाटकों में एक साथ कथ्यों की योजना भी की गयी है। ऐसे नाटक के कथ्य अधिकांशतः कई–कई स्तरों पर स्पष्ट होते हैं और युगीन प्रदूषण से परिचित कराते हैं। ऐसी नाट्य रचनाओं में मणि मधुकर का 'रस गंधर्व' और 'बुलबुल सराय', 'भीष्म साहनी का 'हानूश', लक्ष्मी नारायण लाल का 'राम्म की लड़ाई', शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य' तथा हमीदुल्ला का 'उत्तर उर्वशी' आदि।

साथ ही समाकलीन हिन्दी नाटकों में युद्ध के विभिन्न आयाम – जैसे युद्ध पूर्व का भय एवं आतंक या युद्धकालीन ध्वंसात्मक कार्यवाही से उत्पन्न विषाद अथवा युद्ध के बाद का संत्रास तथा विनाश आदि को कथ्य बनाया गया था।–(जैसे : घाटियाँ गूँजती हैं, नेफा की एक शाम, उत्तर प्रियदर्शी और अँधायुग) । दलित समस्याओं को समकालिन हिन्दी नाटक का विषय भी बनाया है। स्वदेश दीपक का 'कोर्टमार्शल' इसका उदाहरण है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि समकालिन हिन्दी नाटकों में किये गये कथ्यगत प्रयोग सामाजिक, नैतिक एवं वैयक्तिक जीवन के भीतर प्रवेश कर उसका यथार्थ स्वरूप उजागर करने में बहुत समर्थ रहा। जीवन का हर छोटे से छोटे विषय, सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति एवं संवेदना तथा हर जीवन मूल्य, जीवन सन्दर्भ आदि अभिव्यक्ति पा गया। यह समकालीन हिन्दी नाटकों का कथ्य की दृष्टि से बहुत सफल प्रयोग है।

➢ हिन्दी नाटक और रंगमंच : अद्यतन प्रवर्तियाँ

भारतीय नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में हिन्दी नाटक और रंगमंच का महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसे कि हम जानते हैं आधुनिक हिन्दी रंगमंच का आविर्भाव १८५० के दशक में हुआ। भारतेन्दु जी ने बीज बोया गया उसका पल्लवन प्रसाद युग में हुआ और धीरे–धीरे प्रसादोत्तर युग से गुजरते हुए एक विशाल वृक्ष बन गया है। १९८० से २०१२ तक के इस लंबे समय में हिन्दी नाटक और रंगमंच ने कथ्य, शिल्प एवं प्रस्तुतिकरण में महत्वपूर्ण प्रयोग एवं परिवर्तन लाया है। भारतेन्दु युग के नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक कथाओं को विषय–वस्तु बनाया गया। इस समय के नाटकों में सुधारवादी दष्टिकोण के साथ–साथ राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई तथा युगीन समस्याओं को जनता तक पहुंचाने की चेष्टा की गई है। भारतेन्दु युग का रंगमंच भारतीय और पाश्चात्य रंग शैलियों का मिलाजुला रूप है। प्रसाद युग हिन्दी रंगमंच का अविकसित स्तर रहा। इसी लिए उन्होंने ऐसे नाटकों की रचना की जो पाठ्य अधिक हैं, अभिनेय कम।भारत के अतीत गौरव का चित्रण करने के साथ–साथ उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से किया। प्रसादोत्तर युग के नाटकों में जीवन के यथार्थ से अधिक जुड़े हुए हैं तथा उनमें रंगमंचीयता

एवं अभिनेयता का विशेष ध्यान रखा गया है। समाज में प्रतिफलित नवीन परिवेश, नवीन भाव बोध एवं नवीन मान्यताओं ने नाटकों की विषय–वस्तु को भी बदल दिया। नाटक ने पुरानी लीक छोड़कर नवीन मार्ग ग्रहण किया। नाट्य–पाठ में होने वाले नवीन परिवर्तनों के साथ–साथ रंगमंच एवं रंग–प्रस्तुयों में भी नवीन परिवर्तन और प्रयोग आने लगा। इसका मुख्य स्रोत है – राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय। प्रसादोतर युग विशेष कर सन् १९५० के बाद हिन्दी रंगकर्मियों तथा नाटककारों मे पाश्चात्य एवं अन्य रंग प्रवृतियों की जानकारी बढने लगी। १९६० तक आते आते हिन्दी में एक रंगआन्दोलन जन्म लिया। इसे 'निजी रंगआन्दोलन' के नाम से संबोधित किया गया। इस रंगआन्दोलन ने हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। इस आन्दोलन ने हमे लोकधर्मी प्रवृति की ओर वापस ले गया। यहाँ लोकनाट्य, लोककथा और लोक रंगमंच के ज़रिए समसामायिक समस्याओं को प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में हबीब तनवीर का नाम एवं योगदान महत्वपूर्ण है। इस आन्दोलन ने रंगकर्मियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। साथ ही नाटक और रंगमंच के अस्तित्व को भी चुनौती दी। नाटक की पूर्णता पर चर्चा हुआ। क्या नाटक पढने केलिए है या मंचन के लिए।

इस समय हिन्दी नाटक और रंगमंच में नवीन प्रयोगों का बोलबाला हो रहा था। लोकनाट्य, लोकरंगमंच, संस्कृत, पाश्चात्य, चीनी, जापानी, मोक्सिकन, अमेरिकन आदि रंगमंचों के शिल्प एवं शैली को अपनाते हुए यहाँ नवीन प्रयोग हुआ। मिट्टी की गाड़ी', 'आला अफसर', 'इंस्पेक्टर जनरल', 'लिसिसट्रेटा अरिस्टोफिनीस के यूनानी नाटक का अनुवाद तथा निर्देशक राजेंद्र नाथ', 'हयवदन' आदि । इब्सन,सोफोक्लीस, मोलियर, कामू, स्ट्रीनबर्ग, शेक्सपीयर, ब्रेख्त और बैकेट आदि के नाटकों के मंचन के माध्यम से विश्व नाट्य साहित्य के हिन्दी मंच को अधिक संमृद्ध बनाया। इससे हिन्दी के रंगकर्मी फ्रांस, इंग्लैंड, नार्वे, स्वीडन, ग्रीक आदि नाटकों तथा नाट्यशैलियों के संपर्क में आए।

हिन्दी रंगमंच के विकास में बंसी कौल, नादिरा जहीर बब्बर, दिनेश ठाकुर, मोहन महर्षि, रंजीत कपूर, रीता गांगुली, ओम पुरी, अतुलवीर अरोड़ा, बंसी कौल, सत्यदेव दुबे, शान्ता गाँधी जैसे निर्देशकों ने अपनी प्रतिभा और सम्पन्न रंगदृष्टि से हिन्दी रंगमंच को समृद्ध किया है। शेखंनर का 'एनवयरनमेंटल थियेटर' हिन्दी रंगमंच को फिर से अपने लोक नाट्य की ओर देखने केलिए प्रेरित किया।

यह दुःख की बात है कि हिन्दी में मौलिक नाटकों की सृजन कम गती से हो रहा है। लेकिन रंगकर्मी विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों की ओर आकर्षित हुए। विदेशी नाटकों के अनुवाद तथा रूपान्तर हिन्दी मंच पर आने लगे, बंगला, मराठी, कन्नड़, मलयालम तथा गुजराती से अनुवाद आए।

साहित्य के अन्य विधाओं में जो नवीन प्रवृत्तियाँ हो रही है, उसी तरह हिन्दी नाटक और रंगमंच में भी अद्यतन प्रयोग हो रहा है। आज हिन्दी नाटक और रंगमंच मे स्त्री रंगमंच, दलित नाटक, पर्यावरण विमर्श आदि स्तरों तक पहूँच गया है। रंग प्रस्तुति में अधुनातम तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है। पश्चिमी रंग–ढंग से मुक्त होकर वह अपनी लोक नाट्य शैलियों की ओर आकषित हुआ है और उसने भारतीय विराट् लोक नाट्य की ताकत की पहचान की है। नौटंकी, भवई, जात्रा, नाचा आदि अनेक शैलियों को आत्मसात किया है। एक टोटल थियेटर की कल्पना, एक हिन्दुस्तानी रगमंच की कल्पना रंगकर्मियों के पास है। नाटककार और रंगकर्मी उसी दिश में आगे बढ़ रहे हैं। कविता, कहानी और उपन्यास भी हिन्दी रंगमंच का हिस्सा बने हैं। देवेन्द्र राज अंकुर ने एक नयी रंगमंचीय शैली का आविश्कार किया जिसे 'कहानी का रंगमंच' कहते हैं। यहाँ कहानी का नैरेटिव पक्ष को प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी रंगमंच आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नही है, प्रेक्षकों का भी अभाव है, फिर भी रंगकर्मी और नाटककार मिल कर हिन्दी रंगमंच और हिन्दी नाटक के विकास की ओर अग्रसर है और सही दिशा की ओर अग्रसर है।

Module - 3

इला प्रभाकर श्रोत्रिय

हिन्दी साहित्यकार, आलोचक तथा नाटककार के रूप में डॉ. प्रभाकर का महत्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म १९ दिसंबर, १९३७ के मध्यप्रदेश के जावरा में हुआ। हिन्दी आलोचना के अतिरिक्त साहित्य में उनका प्रमुख योगदान रहा है, विशेष कर नाटक के क्षेत्र में। आपके द्वारा रचित नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य में नई दिशा प्रदान की है। आप मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के सचिव रहे। 'साक्षात्कार' व 'अक्षर' साहित्यिक पत्रिका के संपादक रहे। भारतीय भाषा परिषद के निदेशक एवं 'वागर्थ' के संपादक पर पर कार्य करने के साथ–साथ आप भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली के निदेशक पद पर भी काग्र कर चुके हैं। आप अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं के सदस्य भी है।

प्रकाशित कृतियॉ : आलोचना – 'सुमनः मनुष्य और स्रष्टा', 'प्रसाद के साहित्यः प्रेमतात्विक दृष्टि', 'कविता की तीसरी आँख', 'संवाद', 'कालयात्री है कविता', 'रचना एक यातना है', 'अतीत के हंसः मैथिलीशरण गुप्त', 'जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता', 'मेघदूत : एक अंतयात्रा', 'शमशेर बहादूर सिंह', 'मैं चलूँ कीर्ति–सी आगे–आगे'।

निबंध – 'हिन्दी : दशा और दिशा', 'सौंदर्य का तात्पर्य', 'समय का विवेक', 'समय समाज साहित्य'

नाटक – 'इला', 'साँच कहूँ तो....', 'फिर से जहाँपनाह'।

प्रमुख संपादित पुस्तकें – 'हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका', 'सूरदासः भक्ति कविता का एक उत्सव प्रेमचंदः आज', 'रामविलास शर्मा– व्यक्ति और कवि', 'धर्मवीर भारती : व्यक्ति और कवि', 'समय मैं कविता', 'भारतीय श्रेष्ठ एकांकी(दो खंड)', 'कबीर दास : विविध आयाम', इक्कीसवीं शती का भविष्य',

नाटक 'इला' के मराठी एवं बांग्ला अनुवाद तथा 'कविता की तीसरी आँख' का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित।

कथा स्रोत :

हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार श्री प्रभाकर श्रोत्रिय द्वारा रचित 'इला' मानव समाज में उत्पन्न कई समस्याओं का खुलासा करती है। मानव समाज कितना भी प्रगती के पथ पर आगे बढ गया है, फिर समाज में ऐसे अनेकों समस्याएँ है जो बदला नहीं। अनेकों सोच ऐसे हैं जिनका परिवर्तन आज भी नहीं हो पाया है या सोच में कुछ–कुछ परिवर्तन हो रहा हों। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से व्यक्ति का अस्तित्व, लिंग बोध, व्यक्तित्व का पहचान, नारी शोषण, जार संतान, सामाजिक न्याय आदि विषयों का आलोचनात्मक विमर्श प्रस्तुत किया है। यह नाटक देहान्तर के प्रसंग से जुडी है। इला का सुद्युम्न में देहान्तर होना कई सामाजिक मान्यताओं का खुलासा किया है। नाटककार ने मिथकीय पात्रों एवं परिवेश को लेकर आधुनिक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है। यहाँ मिथकीय पात्र मिथक न बनकर आधुनिक मानव एवं वर्तमान सामाजिक समस्याओं का प्रतीक बन गया है। इस नाटक में प्रयुक्त भाषा शिष्ट है। संवादों में एक तनव दृष्टव्य है।

'इला' नाटक की कथावस्तु का स्रोत पौराणिक कथा से है। श्रीमद् भागवत के नवम स्कंध के पहले अध्याय में 'सुद्युम्न' की कथा इस प्रकार हैः विवस्वान (सूर्य) और संज्ञा के पुत्र थे मनु। मनु की पुत्र–प्राप्ति के लिए आचार्य वशिष्ठ ने मित्रावरुण देवताओं का एक यज्ञ (इष्टि) 'पुत्रकामेष्टि' किया। दुग्धाहार करनेवाली मनु–पत्नी श्रद्धा ने होता से प्रार्थना की कि हे ऋषि, तुम इस तरह यज्ञ करो जिससे मुझे कन्या उत्पन्न हो।

होता के द्वारा उस तरह आहुति देने से यजमान (मनु) की इच्छा के विरुद्ध (श्रद्धा को) इला नामक कन्या हुई। उसे देखकर मनु खिन्न हुए और उन्होंने वशिष्ठ ऋषि से अपनी इच्छा प्रकट की। मनु अपने राज्य और वंश को आगे चलाने केलिए एक पुत्र चाहता था। इस पर वशिष्ठ ऋषि 'इला' को पुरुष रूप में बदलने की कामना से आदि–पुरुष भगवान की स्तुति की। श्री हरि वशिष्ठजी की स्तुति से संतुष्ट हुए और इला को पुरुष–स्वरूप प्राप्त होने का वरदान दिया। परिणामतः 'इला' 'सुद्युम्न' हो गया।

सुद्युम्न एक दिन मृगया के लिए वन में गया। वह मृग के पीछे–पीछे उत्तर दिशा की ओर गया और सुमेरु पर्वत की तलहटी के वन 'शरवण' में पहुँच गया। उस वन में प्रवेश करते ही सुद्युम्न ने यह अनुभव किया कि वह स्त्री बन गया है और उसका घोड़ा भी घोड़ी बन गयी। शेष सभी साथी स्त्री बन गए है। स्त्री बने सुद्युम्न सेवकों के साथ विभिन्न

वनों में भटकने लगा। उसे देखकर चंद्रमा के पुत्र बुध ने उस (स्त्री) की कामना की। उसने भी बुध की पति रूप में कामना की। वे पारस्परिक सहमति और इच्छा से दंपति हुए। उनको (इला एवं बधु को) पुरूरवा नामक पुत्र हुआ। तब स्त्री हुए सुद्युम्न (इला) ने कुलगुरु वशिष्ठ का स्मरण किया। वशिष्ठ आए और सुद्युम्न को स्त्री रूप में देखकर दुखी हुए। उन्होंने उसे पुरुष रूप में बदलने केलिए भगवान् शंकर की स्तुति की। प्रार्थना से संतुष्ट होने पर भी शिव के सम्मुख अपने वचन की रक्षा का प्रश्न था। अतः उन्होंने वशिष्ठजी से कहा कि आपकी कामना के अनुसार यह पुरुष हो जाएगा। लेकिन एक माह पुरुष और एक माह स्त्री रहेगा।

इस प्रकार सुद्युम्न पुरुष होकर राज्य करने लगा, फिर भी एक माह स्त्री होने के कारण वह लज्जा से छिपा रहता था। इस कारण प्रजा उससे संतुष्ट नहीं थी। इसी पौराणिक कथा के स्रोत से यह नाटक रचा गया है।

मुख्य कथा के साथ एक गौण कथा भी है। इला के पति बुध के जन्म की रोमांचक कथा का भी नाटक में अवांतर कथा के रूप में, आंशिक और अपने ढंग से उपयोग किया गया है। श्रीमद भागवत के नवम स्कंध के चौदहवें अध्याय में यह यों कही गई हैं:

चंद्रमा ने अपने यज्ञ और विजय के गर्व में भरकर बृहस्पति की पत्नी का बलात् अपहरण कर लिया। बृहस्पति ने उसे लौटाने की बार–बार याचना की, परंतु चंद्र ने उसे नहीं लौटाया। फलस्वरूप देवों और दानवों में भयानक संग्राम हुआ। युद्ध में भारी संहार होने पर भी तारा नहीं लौटाई गई, तो बृहस्पति ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की। उन्होंने चंद्र को लताड़ा और बृहस्पति को तारा दिलवाई। बृहस्पति ने यह जानकर कि तारा गर्भवती है, उसे आड़े हाथों लिया और कहा कि वह शत्रु द्वारा स्थापित गर्भ को त्याग दे, वे स्वयं उसमें संतान उत्पन्न करेंगे। तारा ने गर्भ त्याग दिया। उसे स्वर्ण कांतियुक्त पुत्र हुआ, जिस पर चंद्रमा और बृहस्पति दोनों ललच गए। दोनों में घोर विवाद हुआ, तब देवताओं ने तारा से पूछा कि यह किसका गर्भ है? लज्जा के मारे तारा निरुतर रही। तब उस पुत्र ने उसे लताड़ कर, दुराचारिणी कहकर, अपने बारे में उससे पूछा। तब भी उसने नहीं बताया। फिर ब्रह्माजी ने युक्ति से पूछा तो उसने बताया कि यह चंद्र का है। इस स्वीकारोक्ति के बाद चंद्र ने उस शिशु को ग्रहण कर लिया। वह बुद्धिमान था अतः ब्रह्माजी ने उसका नाम बुध रखा। नाटककार विचारों को लोगों तक पहूँचाने केलिए नाटक में सर्जनात्मकता की श्रृष्ठि की है। ने इन कथा स्रोत को संजोते हुए आधुनिक संदर्भ में स्त्री समस्याओं पर प्रकाश डालने केलिए सुद्युम्न के राजकाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। सुद्युम्न के शासन एवं न्याय दिलाने की रीति की श्रृष्ठि बडे ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। इस अंक में स्त्री–पुरुष संबंध, स्त्री स्वतंत्रा आदि पर नाटककार ने बडे ही आलोचनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। वशिष्ठ के आश्रम में अरुंधती और वशिष्ठ के बीच जो संवाद प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री–पुरुष संबंध, सुद्युम्न के शरीर में स्त्री–पुरुष तत्व, प्रकृति में स्त्री–पुरुष श्रृष्टि आदि पर तर्कपूर्ण और आलोचनात्मक रीति से प्रस्तुत किया है। एक स्त्री और पुरुष जन के विवाद को सुलझाते हुए सुद्यम्न अपने बीतर के द्वंद्वों, आत्मद्वंद्वों का मानसिक खिंचाव को बखूभी दिया है। अंत में सुद्युम्न शास्त्र और राजनीति को दोष देते हुए वशिष्ठ से प्रश्न करते हुए दिखाया है। वशिष्ठ कहते हैं कि अब से राजनीति और स्मृति–ग्रथं राजा नहीं बनाएगा। वह बनाएगा ऋषि जिसके लिए सत्ता धूल के बराबर है। जिसके न्याय में केवल प्रजा नहीं अपराधी राजा भी दंडित होगा। तभी होगा इस कुचक्र का अंत। हमारे आश्रम का सबसे तेजस्वी और सुशील युवक पुरूरवा, मनु की पुत्रिका इला का बेटा है। वहीं होगा–इस साम्राज्य का शासक। कहते हुए समाप्त करता है। नाटक का अंत पुरूरवा के राज्याभिषेक की तैयासी से होता है। पुरूरवा के राज्याभिषेक यहाँ मनु के सपने की पूर्ती है।

➢ 'इला' में चित्रित समस्याएँ :-

उत्तरप्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल, शैशनिक, साहित्यकार एवं विद्वान स्वर्गीय श्री विष्णुकांत शास्त्री के अनुसार "नाटककार ने आधुनिक युग की विसंगतियों को उजागर करने के लिए बहुत संभावनापूर्ण पौराणिक कथा चुनी है। प्रकृति के धर्म से खिलवाड़ कर मनुष्य अपने दुःखों को ही आमंत्रित करता है, इसे बखूबी उजागर किया गया है। शासक का अहंकार, राजनीतिज्ञों की धूर्तता, पुरुष का दंभ, नारी की विवशता ... इन सभी को नाटक पूरी समझ-बूझ के साथ अंकित करता है।"

प्रस्तुत नाटक में शासक का अहंकार, राजनीजिज्ञों की धूर्तता, पुरुष का दंभ, नारी की विवशता के साथ-साथ लिंग परिवर्तन के जरिए मानव जीवन की नियति को नियंत्रित करने की कोशिश में लगे भविष्य-नियंताओं के प्रयासों की त्रासदी और अमानवीयता को रेखांकित किया है। साथ ही अवैध, जार संतानो की मानसिक अवस्था चित्रण हुआ है।

१. लिंग परिर्वतन से उत्पन्न त्रासदीः प्रस्तुत नाटक का मुख्य विषय लिंग परिर्वतन और उससे उठने वाली त्रासदी ही है। मनु को पुत्रकामेष्टि यज्ञ के बाद जन्मी पुत्री 'इला' को पुरुष रूप में बदलकर जो त्रासदी प्रकृति और पुरुष के साथ हुआ है उसका मंचीय रूप है यह नाटक। प्रकृति के साथ खिलवाड करना मानव त्रासदी को निमंत्रण देना ही है। जो प्राकर्तिक है उसे बदलना असंभव है। हम रूप बदल सकते हैं लेकिन आत्मा को बदल नहीं सकते। बाह्य परिवर्तन ला सकते हैं लेकिन आंतरिक परिवर्तन नहीं होता। इला का लिंग परिर्वतन के बाद सुद्युम्न बन जाने के बाद भी सुद्युम्न पुर्ण रूप से पुरुष बनने में असमर्थ होता है। उसके भीतर स्त्री मानसिकता हमेशा सताया करती थी। एक संदर्भ ऐसा भी आ जाता है जब 'सुद्युम्न' 'इला' में परिवर्तित होती है। वापस स्त्री बन जाने से उसके अंदर की मानसिक संघर्ष एवं द्वद्वं समाप्त हो जाती है। और फिर वापस पुरुष बन जाने से उसमें स्त्री मानसिकता फिर से द्वन्द्वात्मक स्थिति में हो जाता है। 'इला' का लिंग परिवर्तन पुरुष की स्वार्थ मानसिक दशा है। यहाँ मनु अपने शासन को चलाने के लिए एक पुत्र चाहता था। और पुत्री को पुत्र बनाकर मनु ने प्रकृति को ललकारा है। प्रकृति के तत्वों में मानव का हस्तक्षेप हमेशा उसके लिए मुसीबत ही लाता है। इसका उदाहरण स्वयं सुद्युम्न ही है। सुद्युम्न के बीतर इला मैजूद है इसलिए सुद्युम्न को राजकाज, शस्त्र अभ्यास आदि खिन्न लगता है। " मैं क्या करूँ माँ? जाने क्या हो जाता है मुझे? मन चाहता है, धनुष-बाण फेंककर फूलों से खेलूँ, लताओं से बतियाऊँ, हवाओं में उड़ूँ।" उसी समय शरवण वन में प्रवेश करने बाद सुद्युम्न जब इला बन जाता है तो स्त्री सुद्युम्न कहती है- "तुमने, पिता ने, राज्य ने – सबने मिलकर छीन लिया था मुझे - मुझसे। अब मैंने पा लिया है अपना रूप....। 'मै' इस समय जो हूँ, वही हूँ - संपूर्ण, अखंड, समग्र। यही मेरा आत्म-रूप हैः मेरी प्रकृति, मेरा सत्य, मेरा ऋत।"

२. स्त्रियों के अधिकार और विवश्ता की समस्या : प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने स्त्री की विवशता, उसके प्रति होने वाले हत्याचार, अपहरण, उसके साथ बलात्कार आदि पर विचारात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। हमारे समाज में स्त्री स्वतंत्रता को लेकर कई मुद्दे चल रही है। लेकिन बहुत सारे ऐसे अवसर है जहीं स्त्री को विवश होना पडता है। एक स्त्री जब माँ बनती है तो उस पर यह दवाभ बना रहता है कि उसके पेट से उत्पन्न शिशू उसके पति और घर वालों के चाह के अनुसार हो। हमारा समाज उस स्त्री की इच्छा को कोई प्रधानता नहीं देता। नाटक में प्रभाकर शोत्रीय ने माता के अधिकार पर जोर दिया है। वशिष्ठ का कहना- "वह तो वैसे भी माता का अपना अधिकार है। संतान को गर्भ में धारण की पीड़ा कौन झेलता है? रस-रक्त कौन पिलाता है? प्रसव की प्राणांतक वेदना किसे होती है? केवल पिता होने के कारण पुरुष माँ के सारे अधिकार छीन लेना चाहता है?" यहाँ नाटककार ने स्त्री की सबसे महत्वपूर्ण अधिकार पर विचार किया है।

साथ ही स्त्री की शक्ति पर भी विचार प्रस्तुत किया है। "वशिष्ठः हमारे सारे प्रयत्न माँ की सहमति के बिना निष्फल हो जाएँगे। स्त्री तो वैसे भी आद्याशक्ति है, फिर माँ बनकर तो वह सौ गुना शक्तिमती हो जाती है। माँ की शक्ति के सामने तपस्वी की शक्ति बहुत बौनी होती है।" असल में पुरुष सत्ता समाज में स्त्री की इस शक्ति को विशेष महत्व नहीं दिया जाता। स्त्री स्वतंत्रा के नाम पर स्वतंत्र होना चाहती है लेकिन यहाँ इस स्वतंत्रा की आलोचना करते हुए नाटककार ने सुद्युम्न के ज़रिए यूँ कहा – 'अरक्षित स्त्री की बड़ी दुर्गत है, पुत्री? संरक्षण में स्त्री जितनी स्वाधीन है, उतनी स्वाधीनता में नहीं।' 'सुद्युम्न : अब पत्नी पर अत्याचार किया तो तुम्हें दंड दिया जाएगा।' यहाँ एक समर्पित शासक के रूप में सुद्युम्न यह विधी देता है कि 'अब पत्नी पर अत्याचार किया तो तुम्हें दंड दिया जाएगा।' स्त्री सुक्षा पर नाटककार ने ऐसा प्रकट किया है– 'सुद्युम्नः जो स्त्री अपनी रक्षा नहीं कर सकती उसकी रक्षा संसार में कोई नहीं कह सकता। रक्षा का अर्थ समझती हो? देह की ही नहीं, अपने अधिकार और सम्मान की रक्षा।'

३. लिंग भेद :– हमारे समाज में एक ओर बात है देखा जाता है कि लोगों को पराए बेटियों से लगाव तो है लेकिन जब अपने लिए बच्चा चाहता है तो उसके मन एवं सोच में बेटा ही होगा। यहाँ पुत्र को प्रधानता दी जाती है। इसी सोच ने माता के अधिकार को छीना है। इला का जन्म भी इसी सोच से होता है। पुत्रकामेष्ठि यज्ञ के अवसर पर श्रद्धा मन में पुत्री इस लिए चाहती थी क्योंकि मनु को प्रजाजनों की कन्याओं से प्यार है। "श्रद्धा : मैं महाराज का मन ही प्रकट कर रही हूँ। उन्हें कन्याओं से बहुत प्रेम है। वे प्रजाजनों की कन्याओं को अपने हाथ से भोजन कराते हैं; उपहार देते हैं; विवाह कराते हैं। अब क्या स्वयं उन्हें, अपने मुख से कहना पडेगा कि वे घर में एक प्यारीसी बेटी की प्रतीक्षा कर रहे हैं?"।

शिशुओं के लिंग–भेद को भी इस नाटक में बडे कट्टर आलोचना की है। "श्रद्धाः तो क्या कोई 'प्रत्रिकामेष्टि' भी होता है तापस कुमार? यह तो संतान मात्र की कामना से किया जाता है। इसमें लिंग–भेद कहाँ से आ गया? सुद्युम्न के राजभवन में आयी स्त्री को पुत्र ना होने के कारण अपने पति का हत्याचार सहना पड़ता है– 'वह क्या मेरे बस में हैं? बेटी से मन नहीं भरा इनका, अब कहाँ से लाकर दूँ इन्हें बेटा?' समाज इस तरह के हरकत बहुसंख्यक औरतों को सहना पडता है। इस अवस्था के खिलाफ सुद्युम्न यूँ कहता है – 'क्या बेटे के बिना तुम्हारे प्राण निकले जा रहे हें?' 'मूर्ख पुरुष समझता नहीं है कि जैसे पुत्र आत्मा है वैसे ही पुत्री भी आत्मा है'

४. अवैध संतानों के अस्तित्व और अधिकार का पहचानः– प्रस्तुत नाटक में बुध के ज़रिए अवैध संतानों के पहचान पर आलोचनात्मक विमर्श किया है। अवैध या जार संतान होने के कारण बुध को जंगलों में अपना जीवन भिताना पड़ा। अपनी इस विवशता का कारण बुध ऐसा कहता है– 'मैंने नहीं चुनी थी तपस्या। वह थोप दी गई थी मुझ पर – संसार के विकत विधान द्वारा । दो पहाड़ों के बीच बँधी रस्सी पर मैं साधता रहा था अपने को।' हमारे समाज में जार संतानों को कभी भी मान्यता नहीं देते। बुध के शब्दों में– 'देख लो– माँ और पिता के होते हुए भी मैं जारज। परित्यक्त । अनाथ।' प्रकृति और पुरुष के अनुराग से जन्मे संतानों को कैसे जारज कह सकते हैं। जन्म से लेकर इन बच्चों को कडुआहट झेलना पडता है। जिससे इन्हें समाज से दूर रहना पडता है। इस नाटक में नाटकार ने अपने अवाज को इला और सुद्युम्न के शब्दों में व्यक्त किया है–' तुम इस पाखंड को, अन्याय को दुनिया से मिटाने का बीड़ा क्यों नहीं उठाते?' 'तो अब वही इतिहास मेरा द्वार खटखटा रहा है। मुझे ही उठाना होगा बीड़– इस अन्याय के विनाश का।'

५. शासक का अहंकार एवं कर्मचारियों की लापरवाही : व्यक्ति संबन्ध और व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ साथ नाटककार ने शासक और राज्य कर्मचारियों के अहंकार और दबंग का भी आलोचना की है। महामंत्री के शब्दों में 'वास्तव में साम्राज्य की स्थिति अत्यंत गंभीर है... चारों ओर त्राहि–त्राहि मची है.... कर्मचारी नियंत्रण से बाहर हो गए हैं... प्रजा से घूस लेते फिरते हैं... प्रजा पर अत्याचार बढ़ रहा है' पूरे राज्य में चोरी और डकैती चल रही है। इस स्थिति का खुलासा करते हुए दंडनायक यों कहता है: 'जब राष्ट्र का सारा अन्न ये अपने भंडारों में भरे रहेंगे... लोगों को इस अकाल में खाने तक को नहीं मिलेगा तो वे चोरी–डकैती नहीं करेंगे तो क्या...' यहाँ राज्य के शासक और कर्मचारियों के लापरवाही पर प्रकाश डाला हे।

६. न्याय व्यवस्ता पर आलोचना– सुद्युम्न के राज्य में होने वाले गलत न्याय व्यवस्ता पर वृद्धा के शब्दों के ज़रिए आलोचना की है। 'कौन सुन रहा है सत्य यहाँ ? क्या यह सज्जनों के रहने योग्य राज्य है? कहाँ है न्याय? सारी व्यवस्था भ्रष्ट और सड़ी हुई है। तुम्हारे न्याय करने वाले; शासन करने वाले; सभी अधिकारी–पाखंडी और नीच हो गए हैं। हमारे मनु महाराज का नाम कलंकित कर दिया है तुमने।' इससे यह व्यक्त होता है कि जो राजा कमज़ोर है उसके राज्य में न्याय व्यवस्ता खतरे में हैं क्योंकि राज्य के सभी अधिकारी गलत होते हैं। नाटक में स्त्री परियादी को दिए गये ढंड गलत न्याय व्यस्ता का चित्र मिलता है। उस स्त्री को दिये गए ढ़ड और उसके खिलाफ हत्याचार करने वाले पुरुष को वहीं ढंड देने केलिए कहती है तो न्याय पंडित कहता है कि प्रार्थी की इच्छा से न्याय–व्यवस्था नहीं चलती। तो इसके खिलाफ नारी कहती है – ' झुठे साक्षियों, घूस लेकर अपराध गढ़नेवालों और असहाय स्त्री के साथ पशुओं से भी बुरा बर्ताव करनेवालों की इच्छा से चलती है वह? इससे कम पर मेरी आग ठंडी नहहीं होगी, और न ऐसे अत्याचारों का अंत होगा, महाराज।' यहाँ हमारे समाज में न्याय विधी सत्य पर नहीं परंतु झूठे साक्षियों पर ठिकी है। यह नाटककार का विचार है स्त्रियों पर अत्याचार करने वालो को ढंडित करने का राय है। यह सही है कि स्त्रियों के खिलाफ अत्याचार करने वालों को इस तरह ढंड देना है।

७. तीसरे लिंग की समस्या : हम ऐसे भी कह सकते हैं कि 'इला' नाटक में प्रतिपादित इला और सुद्युम्न की कथा तीसरे लिंग या हिजडों की दुख एवं द्वन्द्व भरे जीवन को व्यक्ति करते हैं। सुद्युम्न द्वारा अनुभव करने वाले सभी द्वन्द्व उन व्यक्तियों का द्वन्द्व है जो हमारे समाज में देहांतर की समस्या से पीडित है। ऐसे लोग बाहर से दिखते एक है और अन्दर से दूसरा। कभी कभी बाहर से पुरुष और अन्दर से स्त्री तो कभी बाहर से स्त्री और अन्दर से पुरुष। ऐसे लोगों को समाज में कई समस्याओं का सामना करना पडता है। समाज ने उनके अस्तित्व को या पहचान को कोई मान्यता नही दी है। ऐसे लोगों को स्वीकारने में हमारा समाज हिचकिचाता है। इस लिए ऐसे लोगों को समाज से दूर किसी अंधेरे कोने में छिपना पडता है। सुद्युम्न ने भी लोक लज्जा के कारण अपने आप को राजमहल में लोगों से दूर आने को छिपाये रखा। समाज में ऐसे लोगों को हिजडा, किन्नर, नपुंसक, अरवाणी आदि नाम से पुकारते है। इस नाटक के ज़रिए नाटककार ने समाज में देखे जानेवाले ऐसे लोगों के समस्याओं को चित्रित किया है।

इस तरह प्रभाकर जी ने 'इला' नाटक के माध्यम से समाज में विशेषकर व्यक्ति की मानसिक दशा, द्वन्द्व, संघर्ष, स्वतंत्रा की चाह, पहचान की स्मस्या, व्यक्तित्व का पहचान आदि मानवीय संघर्षों को व्यक्त किया है।

Module - 4

➢ हिन्दी रंगमंच उद्भव और विकास

भारतीय रंगमंच विश्व के उन गिने चुने रंगमंचों में से एक है जो सालों पुरानी संस्कृति से उद्भूत है। भारत में रंगमंच का आरंभ कब से हुआ इस की जानकारी नहीं है। फिर भी हम यह मान सकते हैं कि भारत में अन्य कला और संस्कृतियों की तरह रंगमंच का आरंभ धार्मिक या सामाजिक कर्मकाण्डों, नृत्य, त्योहारों, जादू आदि से हुआ होगा। यहाँ की विभिन्न जन–जातियों के बीच जन्म, मृत्यु, यौवनारंभ, विवाह, कृषि, शिकार, युद्ध, देवी–देवताओं की पूजा, जादू–टोना आदि कर्मकाण्ड हैं जिनमें नाटकीय एवं रंगमंचीय प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

नाटक को हमारे यहाँ पाँचवां वेद कहा गया है – 'नाट्यस्तु पंचमो वेदः'। काव्य के सारे रूपों में नाटक को सर्वाधिक सुन्दर माना गया है – 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। भरत मुनि के अनुसार संसार में कोई ऐसी कला, विद्या, शिल्प, शास्त्र, योग और कर्म नहीं, जो नाटक में न दिखाया जा सके। महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्रम्' के प्रथम अंक में नाटकों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए यूँ कहा है– नाटक भिन्न – भिन्न रुचियों के व्यक्तियों के लिए एकमात्र माध्यम है, जिससे जन–जन का मनोरंजन होता है।

भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रंगमंच और नाटक की उत्पत्ति का उल्लेख इस प्रकार किया:

"पाठ्यं जग्राह ऋग्वेदात्, सामभ्यो गीतमेव च,यजुर्वेदादभिनयान्, रसानथर्वणोदपि।"

मतलब, ऋग्वेद से कथ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर इस पाँचवाँ वेद की संरचना हुई है। एक बार इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवता ब्रह्मा के पास गये और कहने लगे कि हम कोई ऐसा 'खेल' खेलना चाहते हैं, जिसमें दृश्य और श्रव्य दोनों का समन्वय हो – "क्रीडनीयकामिच्छामो दृश्यं–श्रव्यं च यद्भवेत्।" दरअसल, नाटक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का सशक्त रूप है। इसलिए नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने कहा – जिसमें सारे अंगों, उपांगों, भावों, गतियों को क्रम से व्यवस्थित कर अभिनय किया जाता है, वही तो नाटक है।

संसार में भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' ही रंगमंच पर पहला प्रामाणिक और आधिकारिक ग्रन्थ है, जिसमें सर्व–प्रथम अभिनय और नाट्य–मंचन के अनेक आयामों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। प्रेक्षागृह कैसे हो? कितने प्रकार के हो? किस प्रेक्षागृह में कौन–सा नाटक, किस समय खेले जायें–ऐसे ढेर सारे निर्देश दिये गये हैं। रंग–शाला की बनावट, पात्रों के प्रवेश के भिन्न–भिन्न मार्ग, मंचसज्जा, प्रकाश–व्यवस्था, वेश–भूषा, श्रृंगार, पूर्वाभ्यास, अभिनय के नाना रूप, दृश्य परिवर्तन, संवाद–संप्रेषण आदि अनेक पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसलिए 'नाट्यशास्त्र' को पंचम वेद भी माना गया है।

हिन्दी रंगमंच उत्तर भारत के अधिकतर भागों में फैला हुआ है। उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, बिहार, झारकण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश इसकी भौगोलिक सीमा है। हिन्दी रंगमंच का विकास लोक नाट्यों से आरंभ होता है. लोकनाट्यों के अतिरिक्त संस्कृत रंगमंच, पाश्चात्य रंगमंच, पारसी रंगमंच आदि का प्रभाव और योगदान महत्वपूर्ण है। आधुनिक हिन्दी रंगमंच का उद्भव भारतेन्दु काल से शुरू होता है। भारतेन्दु द्वारा बोया हुआ यह बीज प्रसाद युग में फूट पडा और इसका विकास होने लगा। भारतेन्दु ने प्रचलित संस्कृत रंग शैली से हट कर कुछ नए प्रयोग किये। उन्होंने पारसी रंगमंच का खन्डन किया। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने जो नाट्य–रचना एवं रंगमंचीय प्रस्तुति की उनमें आधुनिक समाज का चित्र मिलता है। इस समय के नाटककारों ने एक ओर नैतिक सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण किया, दूसरी ओर पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों को लेकर परम्परा के निर्वाह के साथ युगी सामाजिक चेतना को भी व्यक्त करने का प्रयास किया। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी',

राधाकृष्णदास ने 'पद्मावती', 'महाराणा प्रतापसिंह', प्रतापनारायण मिश्र ने 'हठी हमीर' आदि नाटक लिखकर तत्कालिक युगबोध को प्रकाश दिया। नाटककारों की दृष्टि अतीत गौरव और वर्तमान दुर्दशा– दोनों पर केन्द्रित हुई।

हिन्दी का सर्वप्रथम रंगमंच काशी में 'बनारस थियेटर' के नाम से स्थापित हुआ था। भारतेन्दु और उनके सहयोगी तात्कालिक रंगमंचीय प्रवृतियों से बचना चाहते थे इस लिए उन्होंने स्वयं एक थियेटर की स्थापन कर अपने तरीके से नाटक खेलने लगे। इसलिए भारतेन्दु स्वयं मंच पर उतरे। उनकी देखादेखी प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास आदि नाटकों में भग लेना प्रारम्भ किया। काशी, कानपुर, कलकत्ता, और प्रयाग साहित्यिक रंगमंच के मुख्य केन्द्र थे। काशी में भारतेन्दु और कानपुर में प्रतापनारायण मिश्र प्रेरणा के स्रोत थे। प्रयाग में 'हिन्दी नाट्य समिति' तथा 'हिन्दी नाट्य समिति' ने कई नाटक खेले।

भारतेन्दु युग में नाटककार रंगमंचीय व्यवस्था का विशेष ध्यान रखते थे। इस युग के अधिकांश नाटकों का शिल्प भी रंगमंचीय है। १८५७ के आसपास हिन्दी में रंग–आन्दोलन की एक लहर–सी उठी थी जब 'आनन्द रघुनंदन', 'नहुष' आदि रंग–धर्मी नाटक लिखे गये। 'जानकी मंगल' हिन्दी का पहला नाटक था जो मंच पर खेला गया। हिन्दी रंग–आन्दोलन का सही बीजारोपण यहीं से होता है। इसी समय भारतेन्दु रंगनेता के रूप में सामने आये और उनके प्रभव और प्रेरणा के फलस्वरू अनेक नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये। 'जानकीमंगल' (१८६८ ई. शीतला प्रसाद त्रिपाठी), 'रणधीर प्रेम मोहिनी' (१८७१ ई. श्रीनिवासदास), 'सत्य हरिश्चन्द्र'(१८७४ई. भारतेन्दु), 'जयनार सिंह की'(१८७६ ई. देवकी नंदन त्रिपाठी), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७६ ई. भारतेन्दु), 'नीलदेवी' (१८८२ ई. भारतेन्दु), 'भारत दुर्दशा' (१८८५ ई. भारतेन्दु) 'हठी हमीर' (१८८७ ई. प्रताप नारायण मिश्र) आदि उल्लेखनी है। भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में कोई ऐसा समर्थ नाटककार और अभिनेता पैदा हुआ, जो नाटक को साहित्यिक प्रतिष्ठा से अलंकृत कर देता। इस युग की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति ऐसी थी की नाटका और रंगमंच अनुप्राणित था जिस पर सरकार की कोप दृष्टि स्वाभाविक थी। इस संदर्भ में पारसी रंगमंच ने अपना स्थान बना लिया। पारसी रंगमंच विशुद्ध रूप से व्यवसाय पर आधारित था। कहा जाता है कि वाज़िद अली शाह की प्रेरणा से अभिनीत 'इंदर सभा' की सफल प्रस्तुति ने पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों को जन्म दिया। यह माना जाता है कि १८५८ के आसपास पारसी रंगमंच का बीपवपन हो चुका था। फारसी रंगमंच एक ओर नौटंकी और स्वाँग की अभिनय–पद्धति से प्रभावित था, दूसरी ओर आंग्ल रंगमंच से। फलतः पारसी–थियेटर के नाटकों और उनके प्रदर्शन में संगीत, नृत्य, अश्लीलता तथा उर्दू के प्रयोग होता है। पारसी रंगमंच ने हिन्दी रंगमंच को प्रभावित किया।

प्रसाद युग– भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को जो साहित्यिक भूमिका प्रदान की, उसे कालान्तर में जयशंकर प्रसाद ने पल्लवित किया। प्रसाद जी के समय तक हिन्दी रंगमंच का पूर्ण विकास नहीं हो सका था, फलतः वे ऐसे नाटकों की रचना में प्रवृत्त हुए, जो पाठ्य अधिक है, अभिनेय कम।

प्रसाद जी ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने वाले हिन्दी के प्रमुख नाटककार माने जाते हैं। भारत के अतीत गौरव का चित्रण करने के साथ–साथ उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से किया है। उन्होंने अपने नाटकों के विषय बौद्धकाल, मौर्यकाल एवं गुप्तकाल से चुने हैं, जो भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। विशाख, अजातशत्रु, राज्यश्री, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ आदि उनका ऐतिहासिक नाटक है। इनमें से कलात्मक उत्कृष्टता की दृष्टि से स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी विशेष महत्वपूर्ण हैं। अपने नाटकों में प्रसाद जी ने अतीत के पट पर वर्तमान का चित्रण किया है तथा इतिहास एवं कल्पना का

सन्तुलित समन्वय करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक बेजोड़ हैं। उनमें भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला का सन्तुलित समन्वय हुआ है। एक ओर तो उनमें कथावस्तु, रीति योजना, रस योजना, उदात्त नायक, विदूषक आदि भारतीय नाट्यकला से लिए गए हैं तो दूसरी ओर कार्य व्यापार, अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष एवं व्यक्ति वैतित्य जैसे तत्व पाश्चात्य नाट्यकाला से लिया गए हैं।

प्रसाद जी प्रयोगधर्मी नाटककार थे। उन्होंने न केवल ऐतिहासिक नाटक की रचना भी की जो संस्कृत के 'प्रबोध चन्द्रोदय' शैली की एक अन्योपदेशक रचना है। 'एक घूंट' उनका सफल एकांकी है तो 'करुणालय' को 'गीत–नाट्य' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

प्रसाद युग के अन्य उल्लेखनीय नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, गोविन्द वल्लभ पन्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, किशोरीदास वाजपेयी, वियोगी हरि, चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

(रक्षाबन्धन, शिवा साधना, प्रतिशोध, स्वप्नभंग, आहुति, विषपान, उद्धार, शपथ, विजय स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ, संरक्षक, विदा, आन का मान, सम्बत प्रवर्तक, अमृत पुत्री, छाया बन्धन आदि हरिकृष्ण प्रेमी जी के प्रसिद्व ऐतिहासिक नाटक हैं।) (संन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिन्दूर की होली और आधी रात – लक्ष्मीनारायण मिश्र जी के प्रमुख नाट्य कृति है।) (मिश्रजी द्वारा रचित प्रमुख नाटक – गरुड़ध्वज, वत्सराज, दशाश्वमेघ, वितस्ता की लहरें – प्रतिद्ध है।) (प्रकाश, स्वातन्त्र्य सिद्धान्त , सेवापथ, सन्तोष कहां, त्याग और ग्रहण, बड़ा पापी कौन, सुख किसमें, महत्व किसे, गरीबी या अमीरी – सेठ गोविन्ददास की रचनाएँ हैं।) (उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, अलग–अलग रास्ते, अंजो दीदी, अंधी गली, कैद, उड़ान एवं जय–पराजय आदि अनेक नाटकों की रचना की।)

प्रसाद युग में यद्यपि समाज–सुधार की प्रवृत्ति को आधार बनाकर नाटकों की रचना की गई। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, छुआछूत, वर्ण व्यवस्था, नारी स्वातन्त्र्य, धार्मिक अन्धविश्वास जैसी अनेक समस्याओं का चित्रण तत्कालीन नाटकों में हुआ, किन्तु इस काल में ऐतिहासिक नाटकों की रचना करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया । इस काल के नाटककारों ने राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्रीयता की भावना जगाने का स्तुल्य प्रयास किया।

प्रसादोत्तर युग– प्रसादोत्तर नाटकों का प्रारम्भ हम सन् १९५० ई. से मान सकते हैं। इस काल के उपरान्त रचित नाटक जीवन के यथार्थ से अधिक जुडे हुए हैं तथा उनमें रंगमंचीयता एवं अभिनेयता का विशेष ध्यान रखा गया है। देश में स्वतन्त्रता के उपरान्त एक नई चेतना का विकास हुआ तथा जनमानसने जो अपेक्षाएं की थीं, वे भी पूरी नहीं हो सकीं। हर जगह स्वार्थपरता, छल–कपट, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता का बोलबाला हो गया। युवा पीढी दिशा भ्रमित हो गई। बढ़ती हुई बेरोजगारी ने तनाव, संघर्ष एवं आपराधिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया। मूल्यों में परिवर्तन हुआ और समाज का ढांचा बिखरने लगा। महानगरीय जीवन, यान्त्रिकता, औद्योगीकरण के कारण जीवन में अनेक नई समस्याओं का विकास हुआ। नवीन परिवेश, नवीन भाव बोध एवं नवीन मान्यताओं ने नाटकों की विषय–वस्तु को भी बदल दिया। नाटक ने पुरानी लीक छोड़कर नवीन मार्ग ग्रहरण किया। यद्यपि इस काल में भी नाटकों की विषय–वस्तु का चयन इतिहास–पुराण के साथ–साथ समसामयिक जीवन से किया गया।

प्रसादोत्तर नाटककारों में विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. शंकर शेष, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, नरेन्द्र कोहली, गिरिराज किशोर, गोविन्द चातक आदि के नाम उल्लेखनीय है।

विष्णु प्रभाकर ने अपने नाटकों में आधुनिक भाव बोध से उत्पन्न तनाव एवं जीवन–संघर्ष को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। इनके लिखे प्रसिद्ध नाटकों में 'डॉक्टर' 'युगे–युगे क्रान्ति' ओर 'टूटते परिवेश'। जगदीश चन्द्र माथुर ने हिन्दी रंगमंच को नई दिशा देने का प्रयास अपने बहुचर्चित नाटकों के माध्यम से किया। 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा', तथा 'दशरथ नन्दन' उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। मोहन राकेश आधुनिक काल के सशक्त नाटककार माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने केवल तीन नाटकों की रचना की, फिर भी उनके नाटक हिन्दी में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके नाटकों के नाम हैं– 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राहंस' तथा 'आधे–अधूरे'।

लक्ष्मी नारायण लाल एक बहुचर्चित नाटककार हैं। 'अन्धा कुआं', दर्पन, मादा कैक्टस, सूर्यमुख, मिस्टर अभिमन्यु, कर्फ्यू, अब्दुला दीवाना, व्यक्तिगत, एक सत्य हरिश्चन्द्र, सगुन पंछी और सबरंग मोहभंग उनकी प्रसिद्ध नाट्यकृतियां हैं। धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग' आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत करने वाला गीत नाट्य है। सुरेन्द्र वर्मा कृत 'सेतु बन्ध', द्रोपदी, 'नायक–खलनायक', विदूषक', 'आठवां सर्ग'। डॉ. शंकर शेष द्वारा रचित 'बिना बाती के दीप', 'बन्धन अपने–अपने', 'एक और द्रोणाचार्य'। रमेश बक्षी कृत 'देवयानी का कहना', 'तीसरा हाथी'। हमीदुल्ला कृत 'समय सन्दर्भ', 'उलझी आकृतियाँ', 'दरिन्दे'। मणि मधुकर रचित 'रस गन्धर्व'। मुद्रा राक्षस कृत 'तिल चिट्टा' 'तेंदुआ', 'मरजीवा', 'योर्स फेथफुली'। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत 'बकरी'। लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा रचित 'रोशनी एक नहीं है', 'अपना–अपना जूता'। आदि इस युग के प्रमुख नाटककार तथा नाट्य रचनाएँ हैं।

१९४० के बाद हिन्दी रंगमंच में दो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुई। एक इप्टा का प्रवेश – इप्टा के ज़रिए वामपंथी कार्यकर्ता रंगमंचीय शैली और प्रस्तुतीकरण में लोक नाट्यों के प्रयोग से तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं को लोगों के सामने प्रस्तुत करते थे। इससे कलकत्ता और अन्य भारतीय क्षेत्रों के रंगमंचों को एक मंच पर लाने का सफल प्रयास किया गया। जिन्होंने आगे चलकर भारतीय रंगमंच के रुपायन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हबीब तनवीर, बलराज साहनी इस आन्दोलन के मुख्य रंगकर्ता थे। दूसरी उपलब्धि रही पृथ्वी थियेटर का आविर्भाव। पृथ्वी थियेटर, पृथ्वीराज कपूर द्वारा १९४४ में स्थापित किया गया। भारतीय रंगमंच में विशेष कर हिन्दी रंगमंच के विकास में पृथ्वी थियेटर का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

साठोत्तरी नाटक : साठोत्तरी नाटक जीवन में अकेलेपन, रिक्तता बोध, मानवीय सम्बन्धों की जड़ता को अभिव्यक्ति देने वाले विषयों से सम्बन्धित है। यह नाट्य साहित्य आधुनिक बोध की भूमिका पर लिख गया है भले ही उसके लिए पौराणिक कथानक चुने गए हों या फिर कथानक का चयन आधुनिक परिवेश से किया गया हो। स्त्री–पुरुष के बदले हुए सम्बधों, व्यक्तियों की खिन्न मनोदशा, अकेलेपन की पीड़ा इन नाटकों की विषय वस्तु रही है। इन नाटकों के शिल्प में भी नवीनता, सांकेतिकता एवं बिम्ब धार्मिता दिखाई पड़ती है। रंगकर्मियों ने इस काल में रंगमंच पर नए प्रयोग भी दिए है अतः लक्ष्मीनारायण लाल साठोतरी नाटक को प्रयोगधर्मी नाटक भी कहते हैं। साठोत्तरी नाटकों में से कुछ प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित है– 'छठा बेटा' (उपेन्द्रनाथ अश्क), 'संन्यासी'(लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'लहरों के राजहंस', 'आधे–अधूरे'(मोहन राकेश), 'पहला राजा'(जगदीश चन्द्र माथुर) आदि।

सातवें दशक के नाटकों में एक परिवर्तन है। चीन एवं पाकिस्तान युद्ध ने देश की व्यवस्था को बदल दिया है। सन् १९६७ में सूखे की चपेट में हिन्दुस्तान के आने से सामान्य वर्ग प्रभावित होता है। शंकर शेष जैसे नाटककारों का

ध्यान इस ओर गया है। मनुष्य की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों को लेकर नाटकों का सृजन हुआ है। नुक्कड़ नाटक की शुरुआत भी इसी दशक में होती है।

आठवें दशक का नाटक एक आक्रोश को लेकर चलता है। इस दशक में शंकर शेष, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विष्णु प्रभाकर, डॉ. सिन्हा, सुरेन्द्र वर्मा, आदि प्रमुख नाटककार है। साथ ही अनूदित नाटककारों में विजय तेंदुलकर का नाम्म आठवें दशक में काफी उभरकर सामने आया है। आठवें दशक के नाटक आकर्षणकारी थे। वे दर्शकों को अपनी ओर खींचते ही नहीं प्रश्न के समाधान को भी प्रस्तुत करते हैं। इस दशक के नाटककारों में असगर वजाहत, भीष्म साहनी, हबीब तनवीर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इस कालखण्ड में ऐसे रंगकर्मियाँ उभरी जिन्होंने देशी मुहावरे की तलाश करते हुए लोकरंग शैली को अपनाया।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी रंगमंच अपने रूप और शिल्प में कुछ परिवर्तन लाया। उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीश चन्द्र माथुर जैसे नाटककारों ने पूरे भारत को अपनी कृतियों एवं रंग प्रस्तुतियों द्वारा आकर्षित किया। धर्मवीर भारती ने काव्य नाटक 'अंधा युग' (१९५४) की रचना की। इसमें उन्होंने महाभारत के ज़रिए दूसरे विश्व युद्ध की यातना को चित्रित किया। मोहन राकेश जैसे प्रतिभा संपन्न नाटककार एवं रंगकर्मी का प्रवेश भी इसी समय हुआ। उनके द्वार रचित 'आषाढ़ का एक दिन' (१९५८), 'आधे–अधूरे' जैसे नाटक भारतीय रंगमंच में मील के पत्थर रहे।

श्यामानन्द जालन का 'अनामिका' (कलकत्ता), सत्यव्रता सिन्हा का 'प्रयाग रंगमंच' (अलहाबाद), सत्यदेव दुबे का 'थियेटर यूनिट' (मुम्बई) और हबीब तनवीर का 'नया थियेटर' (दिल्ली) के आगमन से हिन्दी रंगमंचीय प्रवृत्तियों में एक नया उन्मेष आया। हबीब तनवीर ने १९५४ में 'आगरा बाज़ार' को प्रस्तुत करके हिन्दी रंगमंच के ही नहीं, बल्कि भारतीय रंगमंच को एक नया मुहावरा प्रदान किया।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना तथा 'भारतीय रंगमंच' की अवधारणा के साथ हिन्दी रंगमंच एक क्षेत्रीय रंगमंच की श्रेणी से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। हिन्दी रंगमंच एक रंग सेतू का काम कर रहा है। भारतीय क्षेत्रीय रंगमंचों से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद हो रहा है और इन अनुवादों का अन्य प्रान्तीय भाषाओं में पुनः अनुवाद हो रहा है जिससे 'भारतीय रंगमंच' की परिकल्पना सफलता की सीढी पर चढ रहा है।

१९७० में हिन्दी रंगमंच में मुद्राराक्षस, मणि मधुकर, सुरेन्द्र वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शंकर शेष, नंद किशोर आचार्य, नाग बोदास, रामेश्वर प्रेम, स्वदेश दीपक, असगर वजाहत जैसे नाटककार और बी.एम. शाह, मोहन महाऋषि, भानुभारती, रंजित कपूर, दिनेश ठाकूर, शतीश आनन्द, हरीश भाटिया, गिरीश रस्तोगी, अनिल भौमिक, अलक नंदन, राम गोपाल बजाज जैसे निर्देशको का आविर्भाव भी हुआ।

अहिन्दी भाषा क्षेत्रों के मशहूर रंगकर्ताओं ने हिन्दी में भी अपनी रंगप्रस्तुतियाँ पेश की है। अल्काज़ी, एम.के. रैना, बनसी कौल, अमल अल्लान, उषा गाँगुली, फैसल अल्काज़ी जैसे अहिन्दी भाषी निर्देशकों ने हिन्दी रंगमंच पर अपनी पहचान बनायी है। के.एन. पणिक्कर, बी.वी. कारंत, विजय मेहता, शान्ता गान्धी, प्रसन्ना, रत्थन थैयम, फ्रिस्टस बेन्नीविट्टि (जर्मनी), रिचार्ड शेषनर (अमरिका) आदि के रंग प्रस्तुतियों ने हिन्दी रंगमंच में तहलका मचा दिया है। इन प्रस्तुतियों ने हिन्दी रंगमंच को एक नया रंग मुहावरा प्रदान किया।

१९७० में हिन्दी रंगमंच में निजी रंगमंच की प्रवृत्ति शुरू हुई। इसमें भारतीय लोकनाट्यों और संस्कृत रंगमंचों का मिश्रित प्रयोग होता था। हबीब तनवीर का 'आगरा बाज़ार', 'मिट्टी की गाड़ी', 'चरनदास चोर'(१९७५), 'बहादूर कलारिन'(१९७५), शान्ता गाँधी का 'जसमा ओडन', मधुकर का 'रस–गंधर्व' (१९७५), मुद्राराक्षस का 'आलाअफसर' (१९७७) निजी रंगमंचीय शैलियों में प्रमुख है।

१९८० में व्यावसायिक रेपरटरियों का आविर्भाव होने लगा। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और नया थियेटर के अतिरिक्त श्रीराम सेन्टर, साहित्य कला परिषद् रंगमंडल, लिटिल थियेटर, भोपाल आदि प्रसिद्ध हैं। हिन्दी रंगमंच में स्त्री लेखिकाओं का भी योगदान रहा। मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे, कुसुम कुमार और त्रिपुरारी शर्मा जैसी लेखिकाएँ; कीर्ति जैन, अनुराधा कपूर और अनामिका हकसर जैसी निर्देशिकाएं प्रसिद्ध हैं।

आज हिन्दी रंगमंच अपने विकास के उत्तंग स्तर पर है। विश्व के बदलते रंग परिकल्पनाओं का प्रतिबिम्ब हिन्दी रंगमंच पर देखा जा सकता है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, विश्वविद्यालय के नाट्य विद्यालयों, पर्थवी थियेटर, लिट्टिल थियेटर और अन्य गैरसर्कारी नाट्य संस्थाओं ने हिन्दी रंगमंच को साकार करने में सक्रिय भूमिका निभाई है।

One word (Weightage 1)

प्र. किस नाटक में भारतेन्दु ने भारत की दुर्दशा को चित्रित किया है?

उ. भारत दुर्दशा।

प्र. भारतेन्दु ने शेक्सपियर के किस नाटक का अनुवाद 'दर्लभ बन्धू' नाम से किया।

उ. 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस'।

प्र. भारतेन्दु ने किस नाटक संघ के लिए 'अंधेर नगरी' की रचना की?

उ. 'अंधेर नगरी' की रचना जमींदार को लक्षित करके नेशनल–थियेटर के लिए लिखा।

प्र. भारतीय नारी के आदर्श को प्रतिपादित करने वाला भारतेन्दु कृत नाटक।

उ. नीलदेवी।

प्र. भारतेन्दु जी के पिता गोपालचन्द्र गिरधरदास कृत नाटक कौस सा है।

उ. नहुष।

प्र. 'अंधेर नगरी' में कितने अंक है ?

उ. छह अंक।

प्र. 'इला' किसकी रचना है?

उ. प्रभाकर श्रोत्रीय

प्र. 'इला' नाटक का स्रोत कहाँ से लिया है।

उ. श्रीमद् भागवत के नवम स्कंध क पहले अध्याय से।

प्र. 'इला' नाटक कितने अंकों में विभाजित किया है?

उ. चार अंक।

प्र. किस वन में पहूँचकर सुद्युम्न स्त्री रूप में परिवर्तित होता है?

उ. शरवण वन में।

प्र. 'इला' नाटक के अंत में किसे राज्याभिषेक की तैयारी होती है।

उ. पुरूरवा की।

प्र. पुरूरवा किसका पुत्र है।

उ. बुद्ध और इला का पुत्र।

प्र. 'साँच कहूँ तो....' किसकी रचना है।

उ. प्रभाकर श्रोत्रीय।

प्र. 'फिर से जहाँपनाह' किसकी रचना है।

उ. प्रभाकर श्रोत्रीय।

प्र. अंधेर नगरी के अंत में कौन फाँस्सी पर चढता है।

उ. चौपट राजा।

प्र. अंधेर नगरी के पात्र 'महंत' के शिष्यों का नाम क्या है।

उ. नारायण दास और गोबरधनदास।

प्र. अंधेर नगरी में सिपाही फाँस्सी पर चढाने के लिए किसे पकडकर लेते हैं।

उ. गोबरधनदास को।

प्र. अंधेर नगरी के पात्र गोबरधनदास को आधार बनाकर लिखा गया मलयालम रचना का नाम।

उ. गोवरधन्दे यात्रक्ल

प्र. अंधेर नगरी के पात्र गोबरधनदास को आधार बनाकर मलयालम के किस साहित्यकार ने अपनी साहित्यिक रचना लिखी।

उ. आनन्द।

प्र. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय कहाँ स्थित है।

उ. नई दिल्ली।

Short Answer Questions (Weightage 2)

प्र. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मैलिक नाटकों का लघु परिचय दीजिए।

भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में विषयों की विविधता है।

१. भारत जननी – भारत माता को केन्द्र में रख कर लिखा गया।

२. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति – धर्म के नाम्म पर की जाने वाली पशुबलि का विरोध किया है।

३. विषस्य विषमौषधम् – देशी राजाअओं की दुर्दशा का चित्रण किया है।

४. अन्धेर नगरी – भ्रष्ट शासन तन्त्र पर प्रहार किया गया है।

५. भारत दुर्दशा – अंग्रजी राज्य में भारत दुर्दशा का निरूपण किया गया है।

६. नील देवी – भारतीय नारी के आदर्श को प्रतिपादित किया गया है।

७. प्रेम जोगिनी – काशी में होने वाले पाखण्डों, बाह्याडम्बरों तथा अनर्थों का भण्डाफोड किया है।

८. चन्द्रावली – प्रेम भक्ति को प्रतिष्ठित करने का सुन्दर प्रयास है।

९. सती प्रताप –

१०. सत्य हरिश्चन्द्र –

प्र. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच के रूपायण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के देन को स्पष्ट कीजिए?

या

प्र. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्य रचना पर आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिए।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा। गद्य के विभिन्न विधाओं का श्रीगणेश उन्हीं के युग से आरंभ होता है। हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया वह सराहनीय है। भारतेन्दु जी ने अनूदित एवं मौलिक दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की। उनके द्वारा अन्य भाषाओं विशेष का बंगला और अंग्रेजी से अनुदित नाटकों ने ना केवल कथ्य को यहाँ लाया बल्कि पाश्चात्य नाट्य शिल्प को प्रथम बार हिन्दी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज सुधार की ,भावना, देश के गौरवपूर्ण अतीत की झांकी, संस्कृति के उज्जवल पक्ष, राष्ट्र प्रेम एवं स्वदेशाभिमान को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। देश भक्ति की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने नील देवी, भारत जननी और भारत दुर्दशा नाटकों की रचना की। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम् व्यंग्य नाटिकाएं हैं जबकि चन्द्रावली नाटिका में मधुरा भक्ति को विषय बनाया गया है। देश प्रेम, हास्य–व्यंग्य एवं समाज–सुधार भारतेन्दुजी के नाटकों के प्रमुख विषय हैं।

भारतेन्दु जी के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ–साथ जनचेतना जाग्रत करना भी था। नैतिक मूल्यों के पक्षधर इस कालके नाटककारों में देश–प्रेम, समाज–सुधार, अतीत गौरव का भाव विद्यमान है। भारतेन्दु जी ने एक ओर तो संस्कृत नाट्य शास्त्र का अनुकरण अपने नाटकों में किया तो दूसरी ओर पाचात्य नाट्यशास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं रहे।

भारतेन्दु जी ने अपने समय में दर्शकों की रुचि को परिष्कृत करने का प्रयास किया और पारसी थियेटर की व्यावसायिक मनोवृत्ति से उत्पन्न हीन रुचियों का प्रबल विरोध किया। उन्होंने संस्कृत नाट्यकला के साथ–साथ पाश्चात्य नाट्यकला का समन्वय करके हिन्दी नाट्य कला को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करने का स्तुत्य प्रयास किया।

प्र. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित नाटकों का विवरण दीजिए।

अनूदित नाटक नाटकों में — विद्या सुन्दर, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी, पाखण्ड विडम्बन, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, नत्नावली, कर्पूर मंजरी, दुर्लभ बन्धु।

१) विद्यासुन्दर – संस्कृत के चौर पंचाशिका के बंगला संस्करण का अनुवाद।
२) रत्नावली – संस्कृत से।
३) धनंजय विजय – संस्कृत से।
४) कर्पूर मंपरी – संस्कृत से।
५) पाखण्ड विडम्बन – संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद।
६) मुद्राराक्षस – संस्कृत नाटककार विशाखदत्त के नाटक का अनुवाद।
७) दुर्लभ बन्धु – अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के मरचेंट ऑफ वेनिस का अनुवाद।

प्र. भारतेन्दु युग के प्रमुख नाटककारों पर टिप्पणी कीजिए।

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ–साथ कुछ ओर प्रमुख नाटककार थे जिन्होंने हिन्दी नाटक और रंगमंच के विकास में अपना–अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

लाला श्रीनिवासदास ने चार नाटकों की रचना की – श्री प्रहलाद चरित्र, तप्ता संवरण, रणधीर प्रेम मोहिनी और संयोगिता स्वयंवर।

राधाकृष्ण भट्ट द्वारा रचित नाटकों में दमयन्ती स्वयंवर, वृहन्नला, वेणीसंहार, कलिराज की सभा, शिक्षादान, रेल का विकट खेल, बालविवाह आदि प्रसिद्ध है।

बालकृण भट्ट द्वारा रचित नाटकों में दमयन्ती स्वयंवर, बृहन्नला, वेणीसंहार, कलिराज की सभा, शिक्षादान, रेल का विकट खेल, बालविवाह आदि विशेष प्रसिद्ध हुए।

राधाचरण गोस्वामी ने प्रहसनों की रचना में नाम कमाया। उनके लिखे प्रहसनों में से कुछ के नाम है– तन मन धन गोसाईजी के अर्पण, बूढ़े मुँह मुंहासे लोग देखें तमासे, अमर सिंह राठौर, सती चन्द्रावली और श्रीदामा।

गोपालराम गहमरी ने सामयिक विषयों को लेकर सफर नाटकों की रचना की। 'देश दशा' में सरकारी कर्मचारी धांधली का वर्णन किया गया है। 'जैसे को तैसा' तथा 'विद्या विनोद' उनके व्यंग्यात्मक नाटक हैं। भारतेन्दु युग के एक अन्य सशक्त नाटककार के रूप में जी.पी. श्रीवास्तव का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने जिन प्रहसनों की रचना की उनमें उलटफेर, दमदार आदमी, गड़बड़ झाला, कुर्सी मैन, न घर का

न घाट का आदि उल्लेखनीय रचनाएँ मानी जाती है। इसी परम्परा में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र के नाटकों को देखा जा सकता है।

भारतेन्दु युग के नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक कथाओं को विषय–वस्तु बनाया गया। समाज सुधार, राष्ट्रीय गौरव, अतीत गौरव को नाटकों के माध्यम से दर्शकों तक सम्प्रेषित किया गया।

प्र. 'अंधेर नगरी' की प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

'अंधेर नगरी' की रचना भारतेन्दुजी ने सन् १८८१ ई. में की गयी थी। अन्धेर नगरी की प्रासंगिकता हर युग में है। यह नाटक अपने कथ्य के कारण प्रासंगिक है। इसमें चित्रित सभी पात्र एवं उनकी प्रवृत्तियाँ हर युग में निरंतर चलता आ रहा है। इसमें चित्रित बाजार एक प्रतीक है, जहाँ सब कुछ ऊपर–नीचे है, उलट–फेर है। इस बाजार में सामान्य बुद्धि गिरवी रखा हुआ है। जिस राज्य में सब कुछ टके सेर पर मिलती है, वहाँ का शासन व्यवस्ता में भयंकर कमी होगा। इस नाटक में जो राजा है वह चौपट है। उनका हर एक हरकत चौपट हो जाता है। यहाँ की न्याय व्यवस्था निरपराधी या साधारण व्यक्ति को ढंड देता है और बिना सोचे समझे अन्याय करते हैं। इस नाटक की रचना उन दिनों हुई जब भारत में सामन्तवादी व्यवस्था खतम होने को आया और पूँजीवादी व्यवस्था आरंभ हो रहा था। आज भी सालों बाद यह नाटक प्रासंगिक इस लिए है, क्योंकि आज पूँजीवादी व्यवस्था देश के बाहर बैठ कर बाजार के माध्यम से सभी देशों में अपना राज कर रहा है। साथ ही देश का शासक इन पूँजीवादियों के हाथ का पुतला है। इस संदर्भ में बाजार और शासक, साधारण लोगों को झूठी व्यवस्था में रहने को मजबूर करता है। जिस तरह अंधेर नगररी के बाजार में नमक से लेकर धर्म का व्यापार होता है, वर्तमान बाजार में भी सब कुछ उपलब्ध है। आज हमारा जीवन पर बाजार का नियंत्रण है। बाजार के साथ साथ विवेकहीन और मूल्यहीन शासक भी हमारे जीवन पर नियंत्रण रखते है। भारतेन्दु युग में यह नाटक देख कर जो विचार आया होगा वहीं आज भी यह नाटक वर्तमान समाज का आलोचनात्मक चित्र खीचता है। इस लिए यह नाटक प्रासंगिक है।

प्र. इला में चित्रित स्त्री समस्या पर टिप्पणी लिखिए।

प्र. अंधेर नगरी में चित्रित बाज़ार पर टिप्पणी कीजिए।

प्र. इला में चित्रित लिंग समस्या पर टिप्पणी कीजिए।

प्र. प्रसाद कालीन हिन्दी नाटक पर टिप्पणी कीजिए।

प्र. साठोतरी हिन्दी नाट्य साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

Essay Questions (Weightage 4)

प्र. हिन्दी रंगमंच के उद्‌भव और विकास पर लेख लिखिए।

प्र. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच की विशेषताओं को समझायिए।

प्र. हिन्दी नाटक और रंगमंच के अद्यतन प्रवर्तियों पर विचार कीजिए।

प्र. 'इला' नाटक का विश्लेषण कीजिए।

प्र. 'इला' में प्रतिपादित समस्या पर चर्चा कीजिए।

प्र. 'इला' नाटक की कथ स्रोत को व्यक्त कीजिए।

प्र. 'अंधेर नगरी' नाटक का विश्लेषण कीजिए।

प्र. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'अंधेर नगरी' नाटक की कथावस्तु लिखिए?

प्र. नाटक के तत्वों पर 'अंधेर नगरी' का विश्लेषण कीजिए।